ीय स्वाभिमान, आर्थिक स्वावलंबन, राष्ट्रीय पुनर्रचना तथा स्वदेशी संदेश की संवाहिका

स्वदेशी

पौष-माघ २०५७ जनवरी २००१

पत्रिका

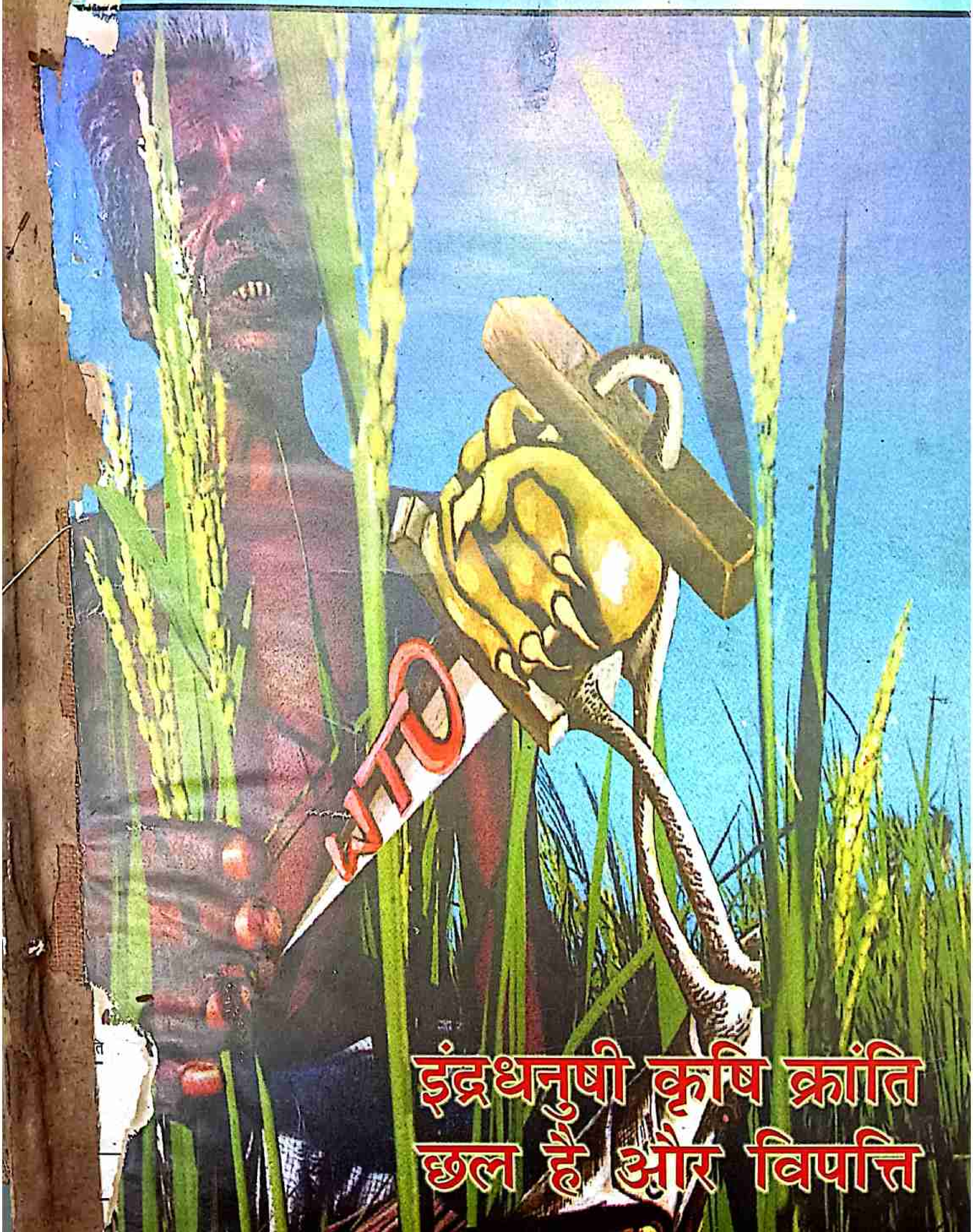

इंद्रधनुषी कृषि क्रांति छल है और विपत्ति

Scanned with OKEN Scanner

अपनी मति गति रहे स्वदेशी

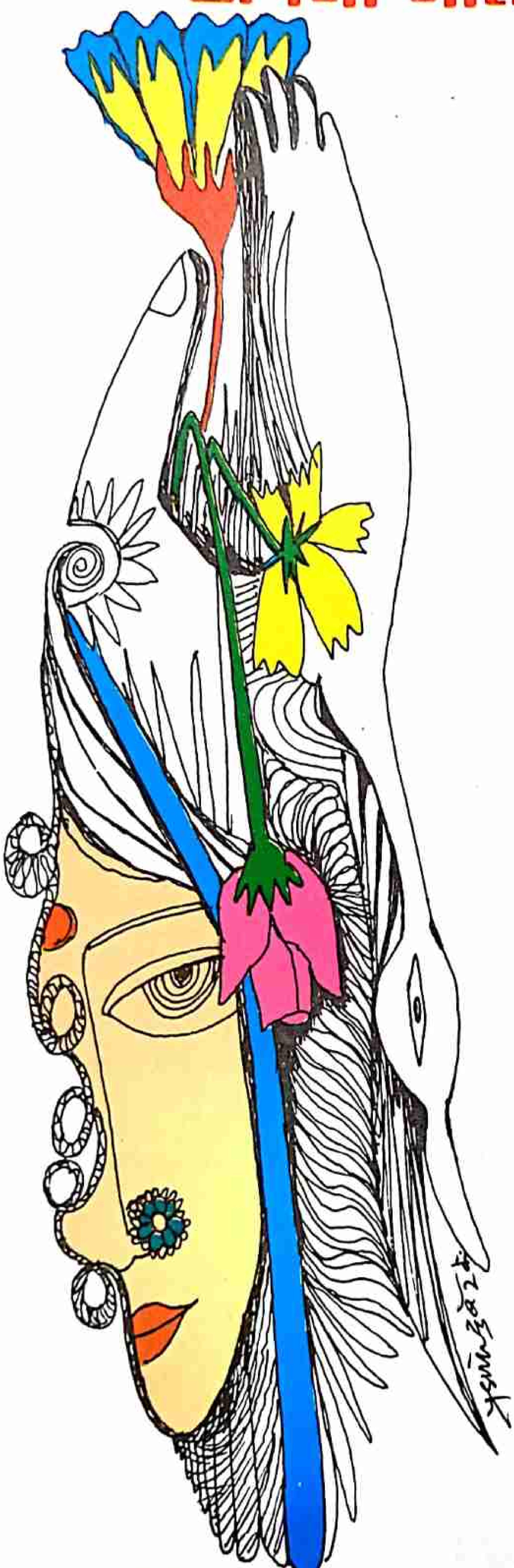

अपनी मिट्टी, अपना पानी, अपना पवन प्रकाश हो।
अपनी मति-गति रहे स्वदेशी, अडिग आत्म विश्वास हो।

कर्जे ले ले धाक बढ़ाना, झूठी शान हमरा है,
खा पीकर सब खर्च डालना अकर्मी का काम है।
प्रखर तीर से धरा चीरकर, प्रकट सुधा उल्लास हो।
अपनी मति गति रहे स्वदेशी .

अपने पाँवों की ताकत से, पहुँचे वैभव शीर्ष पर।
परदेशी बैशाखी के बल, नहीं बनेंगे जगदीश्वर।
विश्व गुरु निज अस्त्र छोड़कर नहीं भिक्षु हताश है।।
अपनी मति गति रहे स्वदेशी .

देशी द्रव्यों की पोषकता, युग-युग सिद्ध प्रसिद्ध रही
परदेशी तत्वों का हित, विष मिश्रित सन्दिग्ध रही।
अपना सूरज, अपना सागर, अपना समीर सुवास हो।
अपनी मति गति रहे स्वदेशी .

आजादी का फिर मतवाला, जोश-खरोश दिखाना है।
आत्मावलम्बन हेतु स्वदेशी, मंत्री अचूक सिखाना है।
तपःशक्ति से परम वैभव का सर्वांगीण विकास हो।
अपनी मति गति रहे स्वदे

पनी वार्ता

प्रिय पाठकवृन्द,

स्वदेशी पत्रिका के इस अंक में आपके लिए दो महत्त्वपूर्ण विषयों कृषि सम्बन्धी एग्रीमेन्ट और पादप किस्म संरक्षण बिल पर आवरण कथा दो मुर्द्धन्य विचारक-राजनेताओं श्री चन्द्रशेखर और डॉ. मुरली मनोहर जोशी के व्याख्यानांश जो स्वदेशी चिन्तन को गंभीरता से अभिव्यक्त कर रहे हैं, दिये जा रहे हैं। आशा है, आप सब इन प्रयासों को पसंद करेंगे।

नमस्कार।

आपका

प्रमोदकुमार दुबे

नुक्रम

कथा

इंद्रधनुषी कृषि क्रांति – छल है और विपत्ति
प्रमोद दुबे................................/७

पादप किस्म संरक्षण कृषक अधिकार बिल – २०००
विद्यानंद आचार्य............................/११

परंपरा को बचाने की पहल : राष्ट्रीय पारंपरिक ज्ञान डिजिटल लाइब्रेरी
नलिन चौहान........................../१५

स्वदेशी कृषि एवं गोरक्षण
अतुल रावत........................../१७

सतत उपभोग : एक नया प्रतिमान
डॉ. मुरली मनोहर जोशी............../२०

भारत की सामर्थ्य
श्री चंद्रशेखर.........................../२२

आर्थिक सुधारों का दूसरा दौर
रुद्रदत्त............................./३१

विश्व-जीवन की गोद है वात्सल्य
डॉ. प्रमोद कुमार दुबे................/२७

खेत की माड़ से/६, हलचल/४१, सामयिकी/४३, समाचार परिक्रमा/३६, ४५

संपादकीय कार्यालय : ६०, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली-११० ००१ ● दूरभाष : ३०१८१७५

स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–६, अंक–४

पौष–माघ, २०५७, जनवरी, २००१

:: अमर वाणी ::

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतुज्ञाः। ते ना रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

जो आप विद्वानों में भी अत्यंत पूजनीय और मननशील सत्यज्ञानी हैं, वे आप संन्यासी लोग विद्या के उपदेश हमें देवें और कल्याणकारी पदार्थों से हमारी रक्षा करें।

• • •

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये॥

जिन विद्वानों के लिए, सबको निर्माण करने वाली पृथ्वी मीठे दुग्धादि पदार्थ देती है और अखण्डनीय मेघों से भरा हुआ अंतरीक्ष-लोक सुंदर जल देता है, अत्यंत बल वाले यज्ञ द्वारा वृष्टि करने वाले, उन लोगों को उपद्रव न होने के लिए हमें प्राप्त कराइए।

(भक्ति दर्पण)

मुख्य संपादक :
डॉ. महेश चंद्र शर्मा

कार्यकारी संपादक :
डॉ. प्रमोद कुमार दुबे

मूल्य : एक अंक – ६ रुपए
वार्षिक सदस्यता शुल्क – ६० रुपए
आजीवन सदस्यता शुल्क – १०००/-

विशेष सूचना : अपनी सदस्यता सूची एवं सदस्यता फार्म कृपया अपना नाम व पता, पिनकोड सहित साफ-साफ शब्दों में लिखकर भेजें।

Scanned with OKEN Scanner

उन्होंने कहा

चीन में बने खिलौने, रेडियो और अन्य कुछ चीजों की भारतीय बाजारों में भरमार हो गई है, यह बात सही है। पर इसके लिए कुछ हद तक हम लोग भी जिम्मेदार हैं। हमें स्वदेशी की भावना का अनुसरण कर विदेशी चीजों से अलग रहने की आदत बनानी चाहिए। इससे विदेशी सामान को खरीदने की प्रवृत्ति अपने आप कम होती जाएगी।

प्रधानमंत्री **अटल बिहार वाजपेयी**

देश में समस्या अधिक उत्पादन की नहीं है बल्कि गरीब आदमी के उसे खरीद पाने की शक्ति नहीं होना है।

हरित क्रांति के जनक
डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन

खादी और ग्रामोद्योग आयोग एक स्वतंत्र 'बिजनेस यूनिट' होते हुए भी इसके कार्य करने के अंग अलग-अलग है।

ऑथर एंडर्सन की रपट से

जिस देश की सरकार विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इशारे पर चलती है। वह देश के नागरिकों का भला नहीं कर सकती।

योगानंद शास्त्री

उच्च शिक्षा का जिस तरह निजीकरण किए जाने की ओर सरकार लग गई है वह उच्च शिक्षा को तबाह करने की बड़ी साजिश है। आज देश के इंजीनियरिंग कॉलेजों में ४०% शिक्षक पद रिक्त पड़े हैं, उनकी ओर ध्यान न देकर अब निजीकरण के नाम पर शिक्षा की दुकानें खुल रही हैं।

डॉ. कपिल कुमार
इग्नू के प्राध्यापक

पाठकनामा

सौ वर्ष जिएं मगर कैसे. . . .

दिसंबर अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका की संपादकीय का शीर्षक हमें यह बताता है कि भारत कृषि और ऋषियों का देश है जो एक प्रकार से सच भी है। लेकिन पत्रिका में जिस प्रकार यह बताया गया कि वेद और योग के द्वारा मनुष्य अपनी आयु को सौ साल तक बढ़ा सकता है, यह बात केवल पुराने समय में ही लागू हो सकती थी। परंतु आज के युग में यह बात आप कैसे साबित करना चाहते हैं कि सौ वर्ष जीने की वैदिक अवधारणा आज भी प्रासंगिक है।

आज जब आयुर्वेद के क्षेत्र में भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की घुसपैठ हो रही है। जिसमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने आंवला, भुईं, काली मिर्च, अश्वगंधा, अदरक, नीम, और न जाने कितने आयुर्वेद में प्रयोग होने वाली दवाओं का पेटेंट कराती जा रही हैं। वहीं आपने यह लेख छापकर दिल को तसल्ली दी है कि आज भी वैदिक अवधारणा सच साबित हो सकती है, जो भारतीयों के मन में विश्वास जगाकर किया जा सकता है। परंतु दिल की तसल्ली और और सौ वर्ष की अवधारणा तभी पूर्ण हो सकती है जब हम वसंत ऋतु का अनुभव करके अपने मन-उमंग में यह बात बैठा लें कि हम सौ वर्ष जीना चाहते हैं और इसके साथ-साथ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सामानों का भी त्याग करना पड़ेगा। अन्यथा सौ वर्ष जीने का अनुशासन नहीं माने और रोग से मुक्ति की दवाएँ पी-पीकर सौ वर्ष जीने की इच्छा रखें तो कहाँ होने वाला।

मेरी लेखक से गुजारिश है कि आगे अपने साहित्य में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का सा[illegible] जोड़कर और उनकी काली कारतूतों का वर्णन एक लाईन में न कहकर इनका पू[illegible] चिठ्ठा खोलना चाहिए. . . .नहीं तो शायद कल कोई बहुराष्ट्रीय कंपनी अपना साम[illegible] यह कह कर बेचेगी कि यह आपकी आयु सौ वर्ष बढ़ा सकता है तो फिर हम क[illegible] करेंगे . . . .

श्रीमती नीलम भण्डारी
लक्ष्मीबाई नगर, दिल्ली

डंपिंग की राजनीति

स्वदेशी पत्रिका का नवंबर अंक प्राप्त हुआ। इस पत्रिका के सभी लेख प्रशंसनीय है। भरत जी का लेख 'चीनी माल का तहलका' काफी अच्छा लगा उन्होंने ठीक ही कहा है कि चीन की सरकार व्यापार के प्रति अधिक सार्थक रुख रखती है। चीन में टैक्स की दरें भारत से कम हैं। विश्व बैंक की २०००-०१ की रपट के अनुसार चीन की सरकार ने देश के कुल उत्पादन का ५.७ प्रतिशत टैक्स के रूप में वसूल किया।। हमारी सरकार ने ८.६ प्रतिशत वसूल किया। चीन का उद्योगपति १०० रुपए के माल पर ५.७० प्रतिशत टैक्स देता है, जबकि हमारा उद्योगपति ८.६० रुपए देता है। इस अधिक कर भार के कारण हमारा माल महँगा पड़ता है।

और आशा है इस विषय से संबंधित अन्य उपयोगी लेख भी आगे अंकों में प्रकाशित करेंगे।

राम प्रवेश तिवारी
ई/४७, पाथरडीह कोलवाशरी
धनवाद - ८२८१३३

Scanned with OKEN Scanner

संपादकीय

विकास और सुरक्षा का आपसी टकराव स्वदेशी में नहीं

इन दिनों विकास और सुरक्षा के सारे मुद्दों की परस्पर विरोधी आवाजें आपस में टकराती सुनाई पड़ रहीं हैं। यह टकराव अकारण नहीं है और परिणाम अंधकार के अन्त के रूप में होगा। आज वैश्विक स्तर पर सतत उपभोग के प्रश्न उठ रहे हैं। क्या मनुष्य जाति का भविष्य बेरोक संसाधनों के शोषण के कारण असुरक्षित होता नहीं जा रहा? गिने-गिनाए वे कुछ ही हाथ हैं जिनकी पकड़ में असंख्य प्राणियों का जीवन अपने को असुरक्षित अनुभव कर रहा है।

ऐसा क्या? कुछ लोग कहते हैं, कम्युनिज्म के दोषों को दूर कर उसे खड़ा करना होगा। लेकिन इस भ्रम को पालना कि यह खंडित धारणा वैश्विक प्रतिनिधित्व के योग्य सिद्ध हो सकती है - पुन: घातक होगा। पूँजीवाद का विकल्प तो शोषण वृत्ति और दिशाहीन असीमित इच्छाओं की उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के अन्त से प्राप्त होगा। ऐसी संतुलित जीवन-पद्धति के प्रत्यक्ष अनुभव का दौर प्रारंभ होने वाला है जो नियंत्रक-बोध को विश्व-जनमानस में स्थापित करेगा। निश्चय ही इस कार्य में भारत की चिन्तनधारा को प्रतिनिधित्व मिलता जा रहा है।

राष्ट्रीय परिदृश्य भी विकास और सुरक्षा के द्वन्द्व के मध्य खड़ा होता जा रहा है। विश्व व्यापार संगठन के संदर्भ में हुए कृषि सम्बन्धी एग्रीमेन्ट हों या उदारीकरण के रिसते घाव, इनमें एक ओर विकास का अदूरदर्शी दृष्टिकोण है, तो दूसरी ओर भयभीत करने वाली असुरक्षा। देश में चतुर्दिक समस्याएँ खड़ी होती जा रही हैं। अभी चीन के उत्पादों की भारतीय बाजार में हो रही डम्पिंग का आतंक चिन्ता का विषय बना हुआ है। खुले बाजार से लगाई गई आशाएँ उलटी पड़ने लगीं हैं। बात उठ रही है कि विदेशी वस्तुओं के प्रति भारतीय जनमानस में उपेक्षा के भाव होने चाहिए, विदेशी वस्तुओं के प्रति बहिष्कार की भावना जागृत करना ही एक रास्ता है, जिससे हमारी आत्मरक्षा हो सकती है।

यह सच है कि राष्ट्र की अस्मिता उसके जन-हृदय में ही निहित होती है। इसी कारण राष्ट्र-भावना के प्रकटीकरण की परिस्थितिवश उभर आई चर्चा पिछले दिनों संसद में गतिरोध का कारण बना। कुछ लोगों ने देश के टूट जाने का वही पुराना भय व्यक्त किया, कुछ लोगों ने तथाकथित धर्मनिरपेक्षता के हनन का रोना रोया। इस चर्चा से यह अवश्य स्पष्ट हो गया कि राष्ट्र की जनभावना और राजकीय व्यवस्था की शक्तियों में दूरियाँ बनी हुई हैं। ये दूरियाँ नहीं होतीं तो राज्य-व्यवस्था निरापद होती।

जिस आर्थिक, सांस्कृतिक शक्तियों के संयोग से निर्मित होने वाली सम्प्रभुता की रक्षा और पोषण का भार राज्य-व्यवस्था के कंधे पर होती है, वे शक्तियाँ बाहरी हस्तक्षेप से दिन-दिन कमजोर होती चली जा रही हैं या कहें उनके सम्पोषण का समुचित कार्य हुआ ही नहीं। व्यतिक्रमित शिक्षा ने इस कार्य के लिए होश नहीं होने दिया और न परम्परा में विश्वास बन पाया। स्वावलम्बी विकास की अवधारणा स्थापित नहीं की जा सकी। आयातित विचारों पर देश चलाया जाता रहा। परिणाम, अनुकूल नहीं हुए, आधी सदी का समय बीत गया।

आज पुन: जन-भावना की जागृति में ही देश में छा रहे संकटों का निदान दिख रहा है। पराधीनता के दिनों में काबुल के बाजार से लेकर बंगाल तक 'वन्देमातरम्' की एक जयकार से राष्ट्र-भावना प्रकट हो रही थी परन्तु आज वैसी बात नहीं है। इसका अर्थ हुआ देश में बाहरी हस्तक्षेप और परायापन बढ़ा है। क्यों? कुछ लोग भ्रम फैलाने में लगे हैं कि राष्ट्रवादी शक्तियों के कारण। यही भ्रम फैलानेवाले लोग स्वदेशी को भी नजर छोटी करके देखते हैं। राष्ट्र-भावना तो सभी समस्याओं का एक मात्र विकल्प है। भारत माता के प्रति स्वाभाविक भक्ति का प्रवाह राष्ट्र की प्राणधारा है। यह हमारी अस्मिता और सम्प्रभुता है। भ्रामक प्रचार में लगे लोग क्या कह रहे हैं, क्या कर रहे हैं? उन्हें स्वयं ज्ञात नहीं, ईश्वर उन्हें सद्बुद्धि प्रदान करे।

आज के आर्थिक परिदृश्य में भी राष्ट्रीय सम्प्रभुता का प्रश्न उठ रहा है। इसलिए कि आर्थिक शक्तियाँ सम्प्रभुता का पोषण करती हैं। इसके विघटित और दुर्बल होने से पराधीनता बढ़ जाती है। पराधीनता जीवन की स्वायत्तता को कुचल देती है। वह मनुष्य के वास्तविक विकास को अपराध और पराधीन बनानेवाली सत्ता के हित में किए हुए विकास को न्याय संगत बताती है। यह पराधीनता ईश्वरीय आस्था की भ्रांतियों को गढ़नेवाले चमत्कारी हाथ भी निर्मित करते हैं। भारत के पास इसका निर्णेता दर्शन भी है। अदृश्य सत्यों का अवघटित रूप - यह जो व्यवहार जगत है - अर्थ का - राज्य व्यवस्था का और संस्कृति का, यही कसौटी है, इस पर खरी-खोटी ईश्वरीय आस्थाएँ भी परखी जा सकती हैं।

सतत उपभोग का प्रश्न पर्यावरण और प्राणी जगत पर विकृत विकास के दुष्परिणामों के कारण उत्पन्न हुआ है। सच्ची ईश्वरीय आस्था कभी भी इस प्रश्न को उत्पन्न नहीं होने देगी। क्योंकि ईश्वर की सच्ची आस्था में ईश्वर द्वारा रचे गये समस्त जगत के प्रति समान दृष्टि होती है। ईश्वर में आस्था रखनेवाला व्यक्ति प्राणी-जगत के साथ हिंसक बर्ताव नहीं कर सकता। वह संयम और विकास का अन्तर्सम्बन्ध समझ सकता है। वह असीमित भोग और वर्चस्व की भूख से मुक्त रह सकता है। इस आस्था से विकास और सुरक्षा दोनों एक साथ सध सकते हैं, इन दोनों में परस्पर विरोध होता ही तब है जब ईश्वर में आस्था नहीं हो और यदि हो भी तो भ्रामक। ये दोनों दशाएँ पराधीनता के लक्षण व्यक्त करती हैं, मुक्त स्वतंत्र दशा के लक्षण नहीं। मुक्त है नि:श्रेय और स्वतंत्र है अभ्युदय। स्व का तंत्र ही स्वदेशी है, वही स्वदेशी जिसकी पुकार आज विश्व-जीवन के रक्षार्थ सर्वत्र गूँजने लगी है।

Scanned with OKEN Scanner

नाहीं चाही अन-धन

मोहन सिंह

किस लिए धन हो, किस लिए अन्न? क्यों होना चाहते हैं हम संपन्न? जिससे अपराध अशांति पर पीड़ा, कष्ट बढ़े, जिससे लोगों पर शासन किया जाए, जिससे शोषण और उत्पीड़न बढ़ें? ऐसा अर्जन – ऐसा उत्पादन ऐसी संपन्नता कष्टकारी है – तभी तो एक भोजपुरी गीत में अन्न-धन को नकारा गया है इस एवज में कि जिस धन से सुख नहीं हो, चैन नहीं हो वह किसी काम का नहीं है –

नाहीं चाही अन-धन, चाही सुखवा चयन
सब मिलल रहें – फुलवा खिलल रहे . .।

भोजपुरी की नवोदित गायिका सुश्री देवी के सुरीले कण्ठ से जब मैंने ये पंक्तियाँ सुनी थी मुझे तुलसीदास की प्रसिद्ध चौपाई याद आई थी –

जहँ सुमति तहँ संपत्ति नाना।
जहँ कुमति तहँ विपति निधाना।।

भोजपुरी के उस गीत में वही कहा गया है जिसे तुलसी ने कहा है जिस धन से क्लेश हो जाए – वह धन किस काम का। सुमति से समरस हुए समाज में ही संपन्नता सार्थक होती है। यही अर्थशास्त्र खेत की मेड़ पर सहज मुस्कान के साथ अँगड़ाई लेता है। आज इसे ठीक से समझने की जरूरत है।

भारतीय गाँव और कृषक समाज का यह वह चेहरा है जिस पर आज की बाजार व्यवस्था अभी हावी नहीं हो पायी है। यह वह समाज है जिसने अपना सामाजिक-तानाबाना कृषि के इर्द-गिर्द बुना है। मौजूदा आर्थिक व्यवस्था के चलते इस ताने-बाने को टूटने का खतरा पैदा हो गया है। कोशिश औद्योगीकरण की बुराईयों को कृषि क्षेत्र में लागू करने की कोशिश चल रही है। गनीमत है कि इस बदहाली की चिंता लोकसभा के गलियारे तक तो पहुँची है इसके खिलाफ संगठित विरोध अभी सड़क पर नहीं हो रहा है। देश के पालनहार किसानों के धैर्य की जैसी अभी परीक्षा की घड़ी चल रही है। अपने मेहनत के बदौलत समाज के हर तबके को निहाल करने वाला किसान अपनी बदहाली पर आँसू बहा रहा है। अपनी इस बदहाली की वह असली वजह भी समझ पा रहा है। शायद इसलिए कि आर्थिक उदारीकरण के इस दौर में कृषि से संबंधित मामलें सबसे ज्यादा पेचीदा हो गए हैं। आसमानी और सुल्तानी नीतियों की दोहरी मार किसानों पर पड़ रही है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के किसानों पर इसका साफ असर देखा जा सकता है। सरकार चाहे तो इसका सर्वे करा सकती है। इस इलाके के किसान अपनी हाड़तोड़ मेहनत के बाद जो पैदा कर रहे हैं, उसका लाभकारी मूल्य नहीं मिलने की वजह से सामाजिक प्रतिष्ठा को बचाए रखना उनके लिए मुश्किल हो गया है। सैकड़ों किसान परिवार ऐसे हैं जिनके लड़के-लड़कियों की शादी ब्याह इस साल स्थगित करनी पड़ रही है। ऐसे अवसरों पर होने वाले वैभव-प्रदर्शन के खर्च उसके बूते के बाहर हो गया है। परंपरा से जुड़े रहने की चाह और आधुनिकता की दौड़ में कहीं पिछड़ न जाने की चिंता एक आम किसान को ऐसे चौराहे पर खड़ा कर रही है, जहाँ उसे लाचारी और बेबसी के अलावा उसे कुछ हासिल नहीं होने वाला। फिर भी पेट की पीड़ा अपने परिवार-समाज के लिए कुछ करने की तमन्ना उसे वहीं ले जाती है जहाँ घाटे का सौदा होने के बावजूद खेती को वह

> **“सैकड़ों किसान परिवार ऐसे हैं जिनके लड़के-लड़कियों की शादी ब्याह इस साल स्थगित करनी पड़ रही है। ऐसे अवसरों पर होने वाले वैभव-प्रदर्शन के खर्च उसके बूते के बाहर हो गया है।”**

छोड़ नहीं पाता, जिंदगी गुजर बसर करने ? लिए लगातार कर्ज भी लेता है और कर्ज चुकाने की स्थिति में खेत नीलामी की अस पीड़ा बर्दाश्त करता है। खेती को बेहतर तरी से करने के लिए ट्रैक्टर वगैरह जैसे जरू साधन उसके जी का जंजाल बन जाता है।

इस जलालत का बहादुरी से सामना क रहे किसानों को देश के कृषि मंत्री अ कारपोरेट खेत का पाठ पढ़ा रहे हैं। उन नजर में यही एक तरीका है जिसके जरि भारतीय किसान खुशहाल हो सकते अमरीका, यूरोप के किसानों की आर्थि स्थिति, सरकारों द्वारा उन्हें दी जाने वा सहूलियतें और बाजार से हासिल होने व मुनाफे को आधार मानकर भारतीय किस को मौजूदा हालात का अध्ययन करें तो स हो जाएगा कि छोटे जोत वाले भार किसान, हजार-पाँच हेक्टेयर की खेती व वाले किसानों के सामने कहाँ ठहरते हैं?

एक ओर सरकार खुद मानती है अंतरराष्ट्रीय बाजार में खाद्यान्नों की की कम होने की वजह से बड़े पैमाने पर नि संभव नहीं है, वहीं नीतिश कुमार तर्क कर रहे हैं इस कारपोरेट खेती के अलावा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। यह तर्क वहं सकता है जिसे भारतीय कृषि की बुनि समझ न हो। यह समझ भी न हो कि भार खेती महज व्यवसाय का साधन न होकर का तरीका है। जीवन पद्धति का आधार

हमारे समाज के जन्म से लेकर तक के संस्कार इसके इर्द-गिर्द बुने गए इसे छिन्न-भिन्न करके भारत को यूरोप अमरीका का बनाने के सपने वहीं पाल स है, जिसे या तो भारतीय खेती को वि व्यापार संगठन के हवाले करने का इराद या विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय और बहुरा कंपनियों के एजेंट उन्हें ऐसा करने के बाध्य कर रहे हों। विश्व व्यापार संगठन बैठक में जाने से पहले भारतीय हुक्मरानों उनके मुलाजिमों को इस परिप्रेक्ष्य में अ समझ दुरुस्त कर लेनी जरूरी है।

Scanned with OKEN Scanner

इंद्रधनुषी कृषि क्रांति – छल है और विपत्ति

प्रमोद दुबे

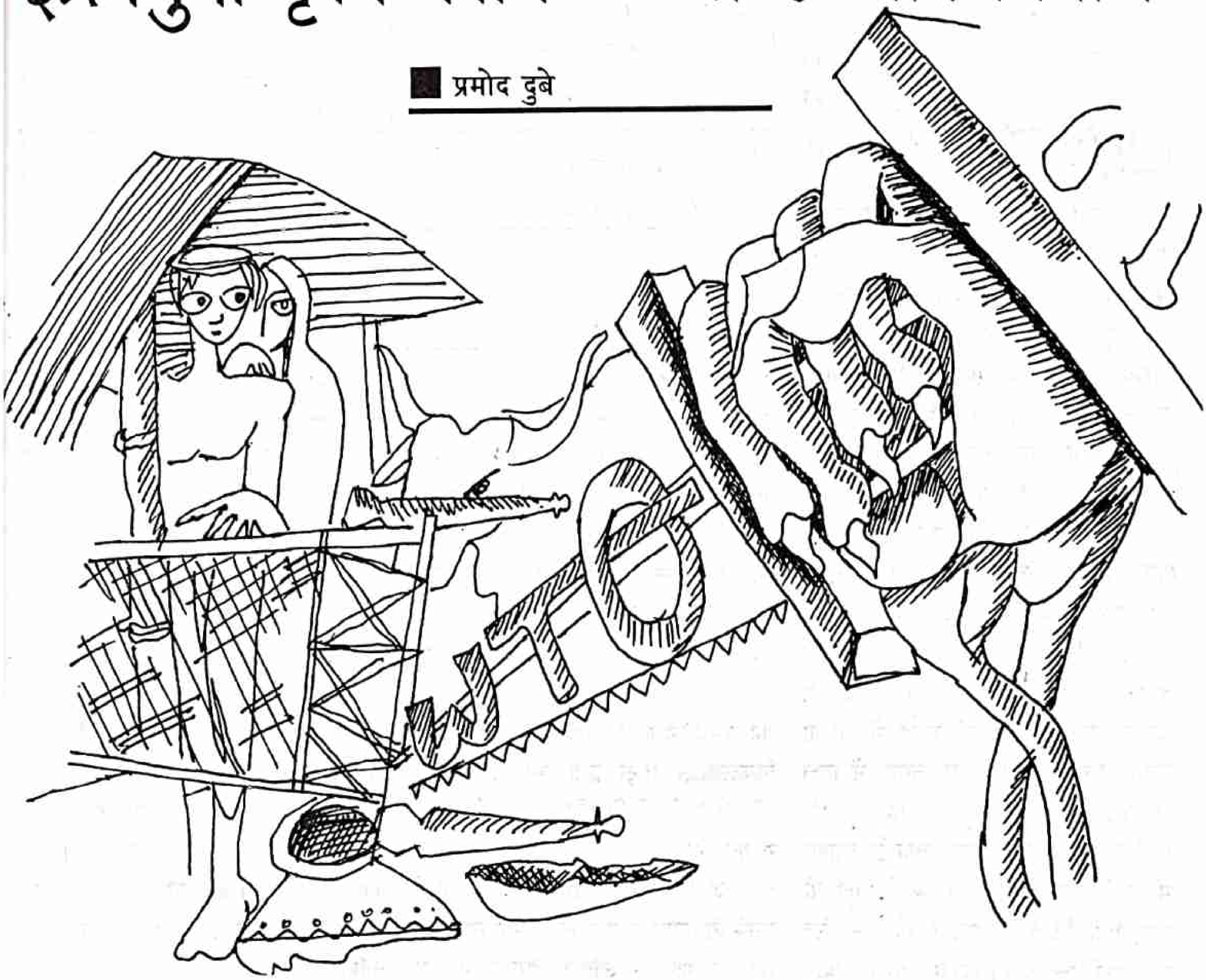

आज पूरे देश में कृषि पर मड़रा रहे खतरे को लेकर चिंता छायी हुई है। यह चिंता अनेक दुष्परिणामों से पुष्ट होती जा रही है। वर्तमान सरकार के पक्ष और विपक्ष दलों में भी विरोधी तेवर देखने को मिल रहे हैं। काँग्रेस-प्रमुख सोनिया गाँधी भी किसानों के हितों की रक्षा के लिए राष्ट्रव्यापी आंदोलन की घोषणा कर रही हैं और पूर्व प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह भी किसान आंदोलन से वर्तमान सरकार के पतन और नई राजनीतिक शक्ति के संघटन का दिवास्वप्न देख रहे हैं, इसके बावजूद कि गैट के उरुग्वे दौर की वार्ता राजीव गाँधी के शासनकाल में प्रारंभ हुई और उन दिनों विश्वनाथ प्रताप सिंह ही वित्तमंत्री थे।

उस समय भी भू-मंडलीकरण के षडयंत्रों के जनक विश्व व्यापार संगठन के दावों पर जिन आशंकाओं को व्यक्त किया जा रहा था वे आगे सच्चाई बनकर सामने आईं। आज अनेक उदाहरणों से प्रमाणित हो चुका है कि दुनिया से गरीबी मिटाना विश्व व्यापार संगठन और विश्व बैंक जैसे आर्थिक साम्राज्य के मोर्चे का काम नहीं है। उनका सीधा उद्देश्य शोषण है। फिर भी इन संगठनों के चंगुल में फँसकर अपने अस्तित्व को नष्ट करने की मानसिकता क्यों है हमारे कर्णधारों की? क्या भारतीय कृषि को व्यापारोन्मुख बनाकर स्थाई समाधान पाया जा सकता है? ऐसा संभव होता तो हरित क्रांति से उत्साहित हुई पंजाब की कृषि के अनेक खौफनाक प्रतिफल सामने नहीं आते।

हरित क्रांति और श्वेत क्रांति की तर्ज पर कृषि मंत्री भारत सरकार इन दिनों इंद्रधनुषी क्रांति की बात कर रहे हैं। यह इंद्रधनुषी कृषि क्रांति और कुछ नहीं कृषि को व्यापारोन्मुख बनाने का प्रयास है। उनका कहना है कि परंपरागत खेती करने के बदले किसान अन्य फसलों की खेती पर ध्यान दें जिससे बाजार की समस्या को कम करने में मदद मिले। वस्तुतः भारतीय कृषि अब विश्व व्यापार संगठन का निशाना बनने जा रही है। इसके तहत कृषि मंत्रालय अपनी रणनीतियाँ बना रहा है।

विनिवेश की बाधाओं को हटाकर जिस प्रकार विदेशी कंपनियों को भारत के उद्योग धंधों का गला दबाने का मौका दिया जा रहा है उसी तर्ज पर भारतीय कृषि का गला दबाने में जितनी बाधाएँ आ सकती हैं

Scanned with OKEN Scanner

	विकसित देश १९९५-२०००	विकासशील देश १९९५-२००४
आयात शुल्क (आधार वर्ष १९८६-८८) सभी कृषि उत्पादों के लिए औसत कमी	३६%	२४%
प्रति उत्पाद में कम से कम कमी	१५%	१०%
घरेलू सहयोग ए.एम.एस. (आधार १९८६-१९८८)	२०%	१३%
निर्यात छूट (आधार १९८६-८८)		
कुल छूट का मूल्य	३६%	२४%
छूट की मात्रा	२१%	१३%

उन्हें हटाने के लिए कानूनी व्यवस्था को विश्व व्यापार संगठन के साथ हुई कृषि संबंधी एग्रीमेंट के अनुसार बनाया जा रहा है। कैसी हैं वे बाधाएँ? कितनी हैं वे बाधाएँ? जो भारतीय कृषि को विश्व व्यापार संगठन के अनुरूप बनाने में आड़े आ रही हैं, इसकी यथास्थिति जानकारी स्वदेशी की लड़ाई के लिए जरूरी है।

विश्व व्यापार संगठन में कृषि संबंधी एग्रीमेंट के तहत प्रमुखत: तीन प्रकार की बाधाओं को हटाने की बात उठी हुई है –

१. आयात शुल्क संबंधी; २. घरेलू सहायता संबंधी; ३. निर्यात पर मिलने वाली छूट संबंधी। इन बाधाओं को हटाने या कम कर देने के रास्ते क्या होंगे? और इनसे उत्पन्न प्रभाव कैसे होंगे?

इस एग्रीमेंट में व्यापार की बाधाएँ दूर करने के निम्नलिखित रास्तों का उल्लेख मिलता है। कृषि संबंधी एग्रीमेंट में १९८६ से १९८८ की अवधि को इन बाधाओं को हटाने के लिए आधार वर्ष माना गया है। इन आधार वर्षों के बीच के समय में आयात शुल्क, घरेलू सहयोग और निर्यात में मिल रही छूट को एग्रीमेंट के तहत सहायता प्राप्त करने के लिए सीमित किया गया है। व्यापार में आने वाली बाधाओं में कमी लाने के लिए एक निश्चित प्रतिशत और निर्धारित समय का उल्लेख है। विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों के लिए अपने व्यापार बाधाओं को कम करने के लिए दिए गए लक्ष्य नीचे सूचीबद्ध हैं – (देखें ऊपर तालिका में)

इस तरीके में सदस्य राष्ट्रों को विकसित, विकासशील एवं कम विकसित या अविकसित तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। अविकसित राष्ट्रों को अपने कृषि उत्पादों पर दी गई छूट को कम करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी तरह विकासशील देशों को भी अलग सुविधाएँ दी गई हैं। इनको अपने छूटों में कमी अगले दस वर्षों में करनी है वहीं विकसित राष्ट्रों के लिए यह समय सीमा छ: वर्षों की है। इसी तरह विकासशील राष्ट्रों द्वारा की जाने वाली प्रतिशत कमी भी विकसित राष्ट्रों की तुलना में कम है।

ऊपरी तौर पर देखने पर यह लगता है उसमें विकासशील एवं अविकसित राष्ट्रों को छूट दी गई है, लेकिन वास्तव में यह एग्रीमेंट विकसित राष्ट्रों के हितों की रक्षा करता है।

सरकार ने इस एग्रीमेंट में बाजार तक पहुँच बनाने के तीन प्रकार तय किए हैं –

(क) कृषि से संबंधित करों की सूची संबंधी।

(ख) करों की दर की निर्धारित मात्रा संबंधी।

(ग) विशेष सुरक्षा प्रबंध संबंधी।

सरकार ने निर्धारित मात्रा पर कर की दर हटाने का प्रस्ताव किया है। बहुत से विकसित देश निर्धारित मात्रा में करों को लागू करते हैं। यह कानून विकासशील राष्ट्रों से विकसित देशों को किए जाने वाले निर्यात की राह में एक महत्त्वपूर्ण बाधा है। विकासशील देशों को कुछ विशेष परिस्थितियों में अपने यहाँ आयात की बाढ़ रोकने के लिए घरेलू उद्योग से संबंधित सुरक्षा उपायों को भी बनाए रखने की इजाजत होनी चाहिए।

बहुत से विकसित देशों में छूट की मात्रा के साथ आयात शुल्क भी ज्यादा है। यह भी १९८६-८७ को आधार वर्ष मानने का परिणाम है। उन वर्षों में कृषि उत्पादों का मूल्य बहुत कम था। अत: विकसित देशों ने अपने किसानों की सुविधा हेतु आयात शुल्क को बहुत ऊँचे स्तर पर कर दिया था। जिससे कमी करने के बावजूद वे ऊँचे स्तर पर बने हुए हैं।

उदाहरणस्वरूप १९९८ में दूध पाउडर पर आयात शुल्क यूरोपीय संघ में ९९%, जापान में ३३६%, कनाडा में २१३% एवं कोरिया में २११% था। अत: भारत को एक औसत ऊपरी सीमा आयात शुल्क के लिए सभी सदस्य राष्ट्रों हेतु लाने का प्रस्ताव करना चाहिए। जब तक यह नहीं किया

हरित क्रांति और श्वेत क्रांति की तर्ज पर कृषि मंत्री भारत सरकार इन दिनों इंद्रधनुषी क्रांति की बात कर रहे हैं। यह इंद्रधनुषी कृषि क्रांति और कुछ नहीं कृषि को व्यापारोन्मुख बनाने का प्रयास है। उनका कहना है कि परंपरागत खेती करने के बदले किसान अन्य फसलों की खेती पर ध्यान दें जिससे बाजार की समस्या को कम करने में मदद मिले। वस्तुत: भारतीय कृषि अब विश्व व्यापार संगठन का निशाना बनने जा रही है। इसके तहत कृषि मंत्रालय अपनी रणनीतियाँ बना रहा है।

Scanned with OKEN Scanner

जाता तब तक विकासशील राष्ट्रों का विकसित राष्ट्रों के बाजार में प्रवेश एक मृगमरीचिका ही बना रहेगा।

इस वर्तमान समझौते (एग्रीमेंट) का एक और महत्त्वपूर्ण भाग है कमी का सभी क्षेत्रों में समान न होना, जैसे विकसित राष्ट्रों में सबसे कम सुरक्षा दिए गए क्षेत्रों से सबसे ज्यादा छूट में कमी की गई है लेकिन जो सर्वाधिक छूट प्राप्त क्षेत्र हैं उनमें की गई कमी सबसे कम है। इससे भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों को विकसित राष्ट्रों के बाजार में प्रवेश में बाधाएँ आ रही हैं।

जून में क्यूबा, पाकिस्तान, श्रीलंका इत्यादि विकासशील राष्ट्रों ने कृषि पर विशेष सम्मेलन के दौरान विकसित राष्ट्रों के उच्च आयात शुल्क का मुद्दा उठाया। उन्होंने कहा कि विकसित देशों में आयात बाधाएँ कम होने के स्थान पर बढ़ी ही हैं। १९९० के मुकाबले तुलना करने पर हम पाते हैं कि आयात शुल्क में २००% तक की बढ़ोतरी हुई है। जैसे गेहूँ एवं मक्का पर १९९० में विकसित देशों में आयात शुल्क ९४% एवं ९०% था। इसकी तुलना में १९९५ में हम पाते हैं कि गेहूँ पर २१४%, मक्के पर १५४% (एफ.ए.ओ. १९९६) आयात शुल्क था।

इस तरह सभी उत्पादों पर शुल्क एवं छूट का एक खोल डाला गया है। जब तक इन्हें नहीं हटाया जाएगा तब तक विकसित राष्ट्रों के बाजार में विकासशील राष्ट्रों के उत्पादों की बिक्री सभी प्रतियोगी क्षमताओं के बावजूद एक कल्पना ही बनी रहेगी।

सरकार ने सरकारी सहयोग के रूप में विकसित देशों द्वारा अपने किसानों को बड़ी मात्रा में दी जा रही सब्सिडी का मुद्दा उठाया है। लेकिन सरकार ने इसमें एक बहुत महत्त्वपूर्ण बिन्दु छोड़ दिया है। यह बिन्दु ही विकसित देशों द्वारा लगातार दी जा रही सब्सिडी का प्रमुख कारण है। पश्चिम में सब्सिडियों के उच्च स्तर पर बने रहने का मुख्य कारण सब्सिडी दिए जाने का तरीका है। इस ढंग में बदलाव लाना ही होगा।

एक आधार वर्ष को सेलेक्ट करना और उसके बाद सब्सिडी की एक निश्चित मात्रा में कटौती खुले व्यापार के स्पिरिट में नहीं है। यह सभी सदस्य राष्ट्रों के ऊपर बराबर उच्च सब्सिडी स्तर नहीं बनाता है।

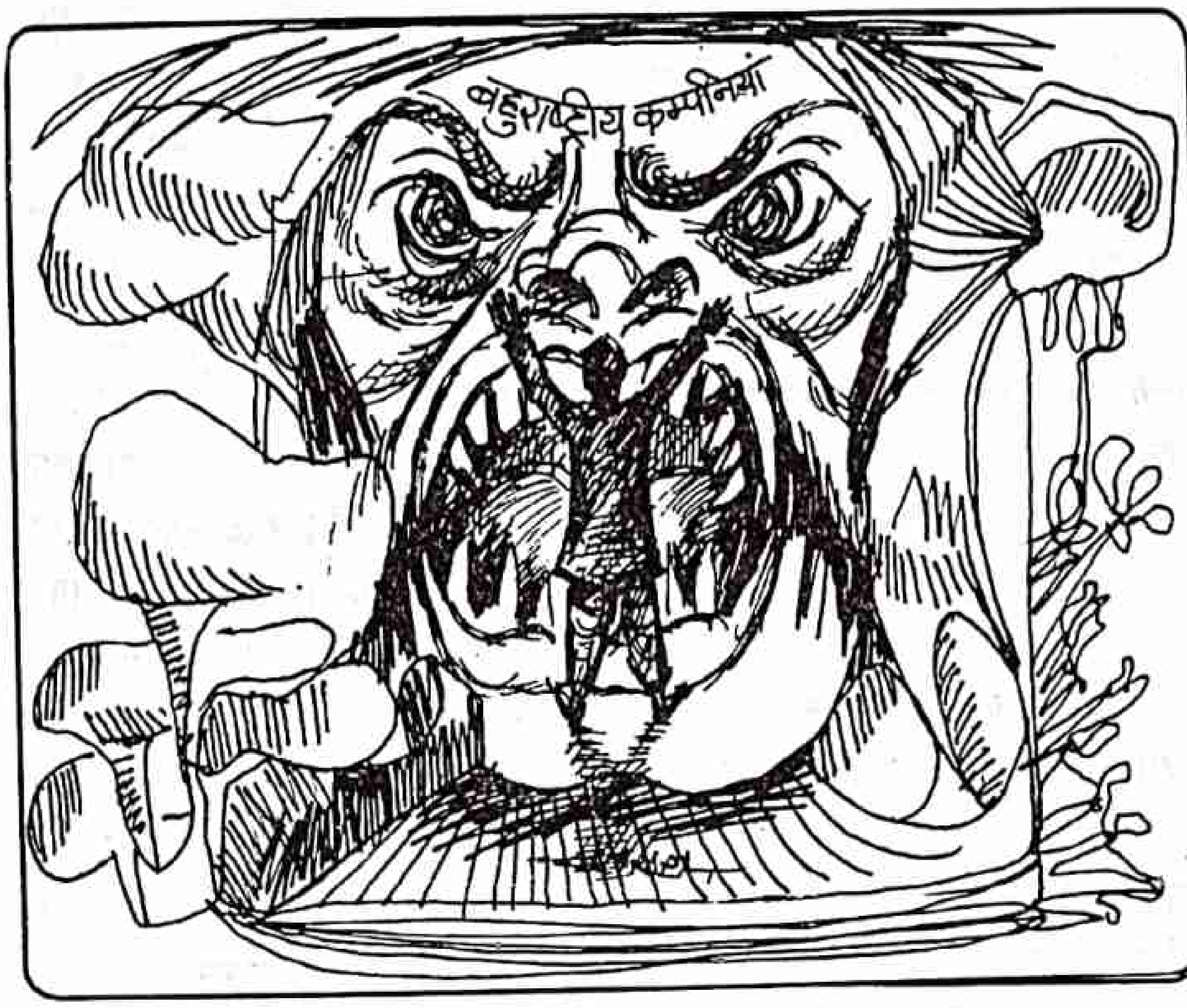

उरुग्वे दौर के वार्त्ताओं की शुरुआत ८६-८८ के दौरान ही हुई। इस दौरान कृषि उत्पादों के मूल्य बहुत कम हो गए थे। अतः विकसित देशों ने अपने किसानों को बड़ी मात्रा में सब्सिडी दी। जिससे यूरोपीय संघ के ज्यादातर सदस्य राष्ट्रों द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी की मात्रा कमी के बावजूद काफी ऊँचे स्तर पर बनी हुई है। यूरोपीय संघ में सब्सिडी की कुल मात्रा कुल उत्पादन के ४०% के बराबर है।

१४ जुलाई २००० को अर्जेंटीना द्वारा डब्लू.टी.ओ. में दिए गए एक प्रपत्र में विकसित देशों द्वारा दी जाने वाली उच्च सब्सिडी की चर्चा की गई है। इसमें लिखा है "जब १९९७ में पूर्वी एशिया की वित्तीय हालत खराब होनी शुरु हुई तब ओ.ई.सी.डी. (ऑर्गेनाइजेशन फॉर इकोनोमिक कॉ-आपरेशन एण्ड डेवलपमेंट) के सदस्य देशों द्वारा कुल ८२९ बिलियन की सब्सिडी दी जा रही थी। १९९८ में यह ३५२ एवं १९९९ में ३६१.५ बिलियन डॉलर हो गई।

घरेलू सहायता का उच्च स्तर विशेषकर विकसित देशों (पूर्वी एशिया एवं यूरोपीय संघ) में, विकासशील देशों के लिए चिंता की बात है। जिन्हें इन उच्च सब्सिडी के साथ प्रतियोगिता करनी पड़ रही है। यह ऊँचे स्तर की सब्सिडी भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खाद्यान्नों के मूल्य में कमी का एक महत्त्वपूर्ण कारण रहा है। हम इसके लिए गेहूँ के मूल्य पर पड़ने वाले असर के रूप में एक उदाहरण दे सकते हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गेहूँ का मूल्य (अमरीकी गेहूँ) जो १९९४ में १५१ डॉलर प्रति टन था १९९६ में २१५.४ डॉलर प्रति टन हो गया लेकिन सन २००० के प्रथम छमाही में घटकर ११२.२ डॉलर हो गया।

इसे देखने से हम पाते हैं कि विकसित देशों द्वारा ज्यादा सब्सिडी देने से सब्सिडी में कमी का कोई असर नहीं है। अतः ए.एम.एस. (टोटल वैल्यू ऑफ सब्सिडी) में कमी करने के तरीके में बदलाव लाना आवश्यक है। इसके लिए एक सीमा का निर्माण करना होगा जो सभी के लिए समान हो और कोई भी देश इसका उल्लंघन न करे।

कुल सब्सिडी की व्याख्या करने पर हम पाते हैं कि कुछ उत्पादों पर विकसित देशों में ज्यादातर कुछ उत्पादों पर कम सब्सिडी दी जाती है और जिन पर ज्यादा दी जाती है उन पर छूट नहीं दी गई है जैसे – चीनी, दूध, मांस जैसी चीजें जिन पर उच्च मात्रा में सब्सिडी दी जाती है। पर सब्सिडी में नहीं या बहुत कम कमी की गई है। लेकिन जिन उत्पादों पर पहले भी सब्सिडी कम थी उन पर सब्सिडी में

Scanned with OKEN Scanner

और कमी की गई है।

अमरीका के कृषि विभाग द्वारा दिए गए डाटा के अनुसार अमरीका द्वारा अपने किसानों को दिए जाने वाले कुल सब्सिडी का ९५% केवल ५ उत्पादों पर दिया जाता है।

इस प्रकार सब्सिडी को प्रति देश कम करने से कोई लाभ नहीं मिलने वाला, बल्कि उसे प्रति उत्पाद एक निश्चित सीमा बनानी होगी।

ब्लू बॉक्स एवं ग्रीन बॉक्स की अवधारणा

हमारी सरकार ने माँग की है कि ब्लू बॉक्स की व्यवस्था को पूरी तरह से समाप्त करना होगा। लेकिन सरकार ग्रीन बॉक्स की वजह से निर्यात पर पड़ने वाले कुप्रभावों की समीक्षा नहीं कर रही।

यह माना जाता है कि ग्रीन बॉक्स एवं ब्लू बॉक्स के जरिए दी जाने वाली सब्सिडी के जरिए व्यापार पर कोई असर नहीं पड़ता क्योंकि ये डीकापल्ड सब्सिडी हैं। इन्हें सीधे पेमेन्ट किया जाता है। जबकि यह सच नहीं है। इस सीधे पेमेंट से भी किसानों को अपने उत्पाद का मूल्य गिराने में सहायता मिलती है और यह दी जाने वाली सब्सिडी की मात्रा पर निर्भर करता है।

सब्सिडी देने का जरिया महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण है सब्सिडी की मात्रा। अत: अगर हम उन पर ध्यान नहीं देंगे तो निश्चित रूप से व्यापार को नष्ट कर देंगे।

ब्लू बॉक्स के अंतर्गत दी जाने वाली सब्सिडी खुले बाजार के सिद्धांत के विरुद्ध है। ये सब्सिडियाँ किसानों को उनके उत्पादों के कम मूल्य के लिए उन्हें क्षति-पूर्ति देती हैं। अत: ब्लू बॉक्स की अवधारणा को समाप्त करना ही होगा।

सतही तौर पर यह लगता है कि ग्रीन बॉक्स व्यापार में बाधा नहीं पहुँचाता। लेकिन अगर हम इसके बढ़ते हुए परिमाण को देखें तो यह विचार हास्यास्पद लगता है। २३ जून, २००० को एन.टी.ओ. के कृषि पर विशेष बैठक में प्रस्तुत एक प्रपत्र में यूरोपीय संघ एवं अमरीका के ब्लू बॉक्स एवं ग्रीन बॉक्स के बढ़ते हुए परिमाण पर चिंता प्रकट की गई है। यह प्रस्ताव पाकिस्तान, श्रीलंका एवं अन्य देशों द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

इस प्रस्ताव में १९८६-८८ से १९९८ के बीच ब्लू बॉक्स एवं ग्रीन बॉक्स के बढ़ते हुए परिमाण को दिखाया गया है जिनमें सब्सिडी की मात्रा में बढ़ोतरी हुई है। ग्रीन बॉक्स सब्सिडी यूरोपीय संघ में १९८६-८८ के ९ बिलियन यूरो मुद्रा के मुकाबले १९९८ में २२ बिलियन यूरो मुद्रा हो गई। वहीं अमरीका में यह वृद्धि १९८६-८८ के २४ बिलियन डॉलर के मुकाबले ५१ बिलियन डॉलर १९९७ में हो गई। लेकिन ग्रीन बॉक्स भी संपूर्ण सब्सिडी का हिस्सा है। अगर हम सहायता के संपूर्ण माप पी.एस.ई. पर ध्यान दें तो हम पाते हैं कि इसमें भी बढ़ोतरी हुई है। ओ.ई.सी.डी. देशों का पी.एस.ई. १९८६-८८ के २४७ बिलियन डॉलर के मुकाबले १९९८ में २७४ बिलियन डॉलर हो चुका है। वहीं यूरोपीय संघ में यह १९८६-८८ के १०० बिलियन डॉलर के जगह १९९८ में १३० बिलियन डॉलर और अमरीका में ४१ बिलियन डॉलर से १९९८ में ४७ बिलियन डॉलर हो गया है। यह साफ है कि बॉक्सों में वर्गीकृत करने से सदस्य राष्ट्रों के संपूर्ण ए.एम.एस. में २०% की कमी आई है जबकि संपूर्ण सहायता का स्तर बढ़ा है। कई देशों मुख्यत: अमरीका एवं यूरोपीय संघ में ग्रीन बॉक्स की सहायता दोहरी हो गई है। यह दिखाता है कि बड़ी संख्या में देशों में अपने घरेलू सहयोग को चैनेलाइज्ड कर उसे ए.एम.एस. से अलग कर ग्रीन बॉक्स में डाल दिया है जिसमें घरेलू सहयोग को खत्म करने का दबाव कम हो जाए।

> **"विश्व के पाँच बड़े निर्यातकों का हिस्सा इस छूट को देने में लगभग पूरी दुनिया में दिए जाने वाले छूट का ९०-९८% तक होता है। जैसे गेहूँ के लिए निर्यात छूट में दुनिया के पाँच बड़े निर्यातकों अमरीका, कनाडा, यूरोपीय संघ, तुर्की एवं हंगरी का कुल हिस्सा ९५% है। चावल के लिए यह १००% एवं इसके निर्यातक हैं इण्डोनेशिया, यूरोपीय संघ, उरुग्वे, अमरीका एवं कोलम्बिया।"**

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्लू बॉक्स की अवधारणा को तो खत्म करना ही होगा इसके अलावे ग्रीन बॉक्स की अवधारणा की भी जाँच करनी होगी।

सरकार ने विश्व व्यापार संगठन के कृषि संबंधी प्रस्ताव में निर्यात में दी जाने वाली छूट को समाप्त करने का प्रस्ताव किया है। निर्यात में दी जाने वाली छूट खुले व्यापार नीति का उल्लंघन है। कोई भी विकासशील देश इस तरह की सब्सिडी अपने किसानों को देने की स्थिति में नहीं है। यह भारत जैसे देशों के निर्यात को विकसित देशों द्वारा किए जाने वाले निर्यात के मुकाबले में आने की क्षमता कम कर देता है। विश्व के पाँच बड़े निर्यातकों का हिस्सा इस छूट को देने में लगभग पूरी दुनिया में दिए जाने वाले छूट का ९०-९८% तक होता है। जैसे गेहूँ के लिए निर्यात छूट में दुनिया के पाँच बड़े निर्यातकों अमरीका, कनाडा, यूरोपीय संघ, तुर्की एवं हंगरी का कुल हिस्सा ९५% है। चावल के लिए यह १००% एवं इसके निर्यातक हैं इण्डोनेशिया, यूरोपीय संघ, उरुग्वे, अमरीका एवं कोलम्बिया।

यूरोपीय संघ पूरी दुनिया में दी जाने वाली कुल निर्यात का ९०% देता है। जैसे मक्खन एवं घी पर १०० रुपए प्रति किलोग्राम, दूध पाउडर पर ३६ रुपए प्रति किलोग्राम इत्यादि। निर्यात में सब्सिडी खुले व्यापार के आवेग का सीधा उल्लंघन है। अत: इसे पूरी तरह से हटाना चाहिए।

सरकार को अनेक देशों में विश्व व्यापार संगठन के विरुद्ध भड़क रही विरोध की आग से भी सबक लेना चाहिए। वह इस कानूनी दाँवपेंच को अंतिम सत्य मान इन्द्रधनुषी कृषि क्रांति का स्वप्न बेचने पर तुली हुई है। ■

Scanned with OKEN Scanner

पादप किस्म संरक्षण कृषक अधिकार बिल - २०००

■ विद्यानंद आचार्य

यू.पी.ओ.वी. सम्मेलन १९७८ एवं १९९१ नए सदस्यों को पादप संरक्षण प्राप्त करने हेतु शुरू में कम से शुरुआत करने की अनुमति प्रदान करते हैं। हमें भी शुरुआत में पाँच से दस प्रजातियों के संरक्षण की बात करनी चाहिए। ये प्रजातियाँ भी सही रूप से नए कानून में सूचीबद्ध हों एवं इसे सरकार को अधिसूचित करने हेतु नहीं छोड़ देना चाहिए। साथ ही सरकार को इस कानून की सीमा का विस्तार अन्य पादपों पर भी विभिन्न क्रमों में एवं १०-१५ वर्षों के कालावधि में करना चाहिए।

सरकार ने वर्ष १९९९ के दिसंबर में संसद के शीतकालीन सत्र में आठवीं बौद्धिक संपदा अधिकार विधेयक प्रस्तुत किया था। इस विधेयक का संबंध पेटेंट, पादप किस्म, सर्वाधिकार, डिजायन, भौगोलिक संकेतकों, सूचना तकनीक, अर्द्धचालक, समेकित परिपथ आरेख आदि। महत्त्वपूर्ण विषयों से भी है। संसद में इस विधेयक को लाने के पीछे जो वजह है वह है व्यापार संबंधित बौद्धिक संपदा कानून की अनुच्छेद ६५(२)। इस प्रावधान के तहत विश्व व्यापार संगठन में प्रवेश करने के पाँच वर्ष पूरे होने पर सभी विकासशील देशों को ट्रिप्स समझौते का पालन करना ही होगा। इस प्रकार यह तिथि १ जनवरी २००० को होती है। कुछ विधेयक तो संसद द्वारा पारित होकर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद कानून भी बन चुके हैं। फिर भी दो महत्त्वपूर्ण विधेयक जो अभी तक कानून नहीं हैं संसद में पारित होने से पूर्व संसद के दो विभिन्न संयुक्त समिति को विचारार्थ सौंप दिए गए है। ये बिल हैं :-

१. पेटेंट अधिनियम (द्वितीय संशोधन), और २. पादप-किस्म संरक्षण एवं कृषक अधिकार बिल २०००।

पेटेंट अधिनियम पर गठित संयुक्त समिति ने अभी तक अपनी रपट जमा नहीं की है जबकि पादप किस्म संरक्षण एवं कृषक अधिकार अधिनियम पर गठित संयुक्त समिति ने अपने रपट को दिनांक २५ अगस्त, २००० को नए सिरे से लिख कर लोक सभा के पटल पर रख दिया। यह रिपोर्ट संसद के वर्तमान शीतकालीन सत्र में चर्चा के लिए रखा जाएगा। यह दोनों विधेयक देश के औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्र के लिए काफी महत्त्वपूर्ण हैं।

जल्दबाजी कार्य

व्यापार संबंधित बौद्धिक संपदा अधिकार समझौता के अनुच्छेद २७(३)(बी) के तहत पादप किस्मों को संरक्षित करने के प्रावधानों का उल्लेख है। इसके तहत या तो पेटेंट या फिर 'सुई जेनरिस' पद्धति के द्वारा पादप-किस्मों को संरक्षित किया जा सकता है। इसी अनुच्छेद के दूसरे पैरा में इन प्रावधानों को विश्व व्यापार संगठन समझौता के लागू होने के अवधि के चार वर्ष के भीतर पुनरीक्षित करने की भी व्यवस्था है। इस तरह यह पुनरीक्षण-कार्यक्रम १९९९ में शुरु हो चुका है जो अभी तक पूर्ण नहीं हुआ है। जीव रूपों के निर्धारण-प्रक्रिया से काफी मौलिक मुद्दे जुड़े हुए हैं जिन पर समाज एवं संबंधित मंत्रालयों के मंत्री से व्यापक विचार विमर्श की आवश्यकता है। इस प्रकार इस प्रक्रिया में काफी समय लगने की संभावना है।

कई अफ्रीकी देशों ने केन्या के प्रतिनिधित्व में विश्व व्यापार संगठन को स्मार-पत्र सौंपा है जिसमें उन्होंने पादप-किस्मों के संरक्षण को लेकर कई समस्याओं एवं विरोधों को उठाया है। उन लोगों ने अनुच्छेद २७(३)(बी) की विस्तृत रूप से समीक्षा करने का प्रस्ताव भी दिया है। इसके अतिरिक्त अनेक विकासशील देशों ने इसे लागू करने से उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर विचार करने एवं इसकी अवधि को बढ़ाने की भी माँग की है। विश्व व्यापार संगठन के सामान्य परिषद ने भी इन मुद्दों पर विचार किया जा रहा है लेकिन अभी तक कुछ भी निष्कर्ष नहीं निकला है।

ट्रिप्स का अनुच्छेद ६५(४) पादप किस्मों के संरक्षण हेतु बनाए जानेवाले कानून के बारे में अस्पष्ट है। यह संरक्षण से जुड़े तकनीकी प्रक्रिया के बारे में जिसकी संक्रमण अवधि १० वर्ष की है। इस प्रकार पादप किस्म संरक्षण से जुड़ी सारी प्रक्रिया बीच भँवर में लटकी है। निष्कर्ष के तौर पर यही कहा जा सकता है कि इतनी अस्पष्टताओं के बावजूद सरकार इन विधेयकों को लाने में जल्दबाजी कर रही है। लगता है कि सरकार पर भारतीय कृषि वैज्ञानिकों का दबाव है जो अपने शोध उपलब्धियों को बचाने की जुगाड़ में है भले ही इसमें आम जनता एवं किसान को अपना सर्वस्व ही क्यों न खोना पड़े। हालाँकि आज तक भारतीय कृषि वैज्ञानिकों का शोध उपलब्धियों का कोई मौलिक एवं तथ्यपरक आँकड़ा उपलब्ध नहीं है।

बहरहाल भारत सरकार ने यह विधेयक संसद में प्रस्तुत कर दिया है जिसके बारे में ऊपर लिखी बातें केवल अकादमिक मुद्दों से जुड़ी हैं। जिस पर सरकार का कोई विशेष ध्यान नहीं गया है। इतना ही नहीं इन विषयों पर विचार करने हेतु गठित संसद की संयुक्त

Scanned with OKEN Scanner

समिति ने भी इन विषयों को गहराई एवं पूरे संज्ञान के साथ अध्ययन करने में अरुचि दिखायी है। अत: अब संसद को ही इन मुद्दों पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

पुनरीक्षित विधेयक में जो नए प्रावधान प्रस्तावित किए गए हैं उन पर भी संसद में विशेष रूप से चर्चा होनी चाहिए।

संरक्षण की संभावना

विधेयक के अनुच्छेद संख्या १४ में पादप के निम्नलिखित किस्म के निबंधन हेतु आवेदन करने का प्रावधान है।

(अ) ऐसे श्रेणी या प्रजाति जो अनुच्छेद २९के उपधारा (२) में वर्णित हैं, ये प्रजातियाँ भारत सरकार द्वारा उसके राजपत्र में सूचीबद्ध होते हैं।

(ब) जो अभिनव किस्म के हों।

(स) जो किसान द्वारा तैयार किस्म हो।

आगे अनुच्छेद २३(६) में यह उल्लेख है कि पादप प्रजनक का अधिकार उस किस्म पर जो धारा २८ में समाविष्ट है, पर तभी हो सकता है जब वह प्रजनक द्वारा आवश्यक रूप से उत्पादित किस्म हो।

पुन: अनुच्छेद १५(२) में पौधे के ऐसे किस्म के निबंधन का उल्लेख है जो अभी तक पूर्व की ही भाँति है एवं उसमें कुछ भी नयापन नहीं पैदा किया गया है। अन्य दो प्रमुख मुद्दों पर भी चर्चा करना आवश्यक है। ट्रिप्स समझौता के तहत जिस पादप किस्म के संरक्षण की बात है वह पौधा एकदम नए किस्म/प्रकार का हो न कि परिवर्तित किस्म का या पुराने किस्म का। 'नयापन' के दृष्टिकोण से न तो परिवर्तित किस्म, न ही पुरानी किस्म को निबंधन का विशेष अधिकार मिलता है जो २८(१) अनुच्छेद के तहत पादप प्रजनकों को नए पादप किस्म के तहत निबंधन का अधिकार देता है। अनुच्छेद २८(१) के तहत पादप किस्मों को उपजाने, बेचने, विपणन, वितरण, आयात एवं निर्यात का विशेष अधिकार भी मिलना चाहिए, जब वह विशेष किस्म नयापन, अलग प्रकार, एकरूपता एवं स्थायित्व के मानदंडों पर जो अनुच्छेद १५(१) द्वारा अनिवार्य बताए गए हैं, खरा उतरता हो।

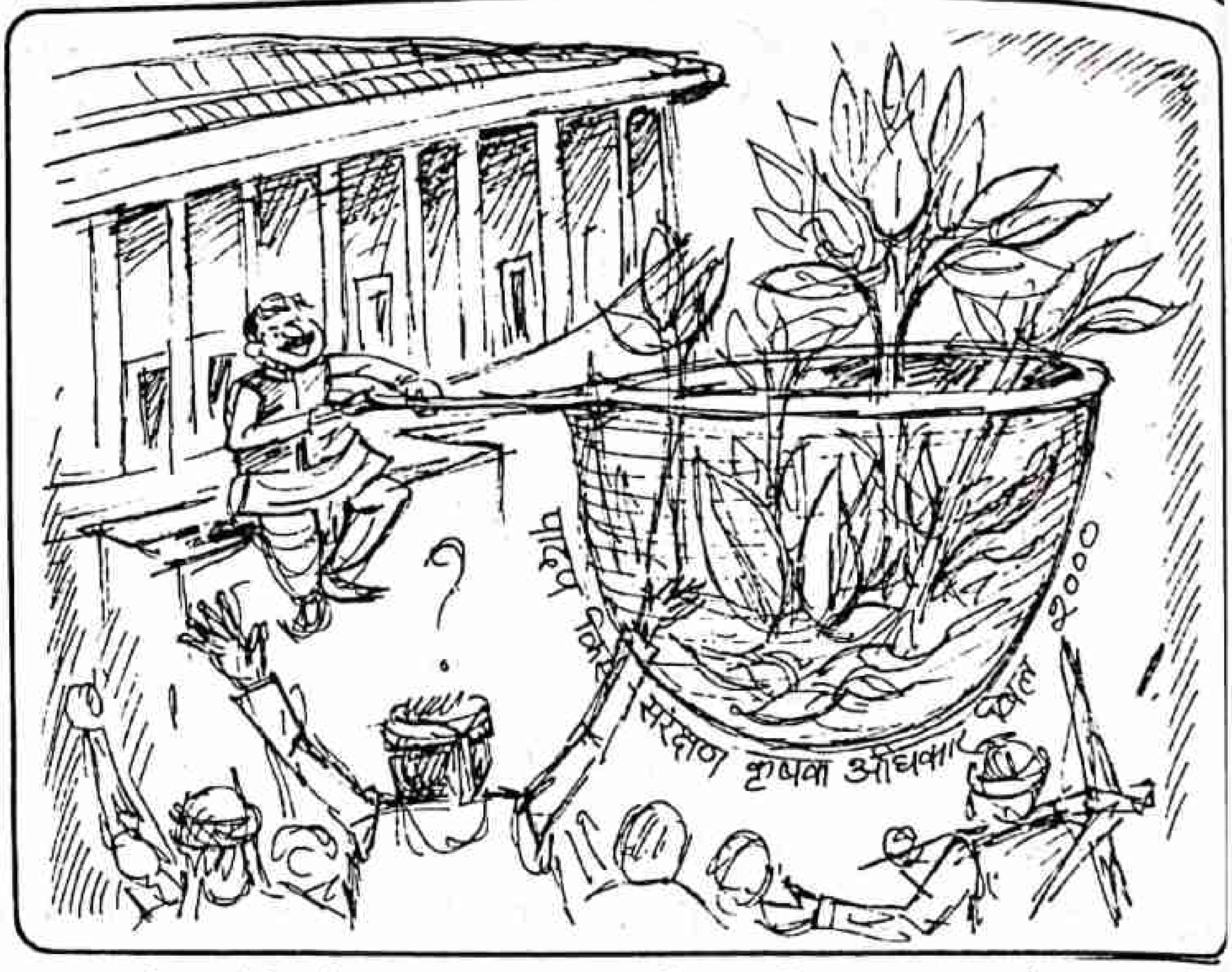

दूसरी बार पेटेंट के तहत संरक्षण उन्हीं उपोत्पादित किस्मों को दिया जाए जो या तो अनुच्छेद २८(१) में विशेषाधिकार दर्जा प्राप्त कर चुके हों या फिर आर्थिक महत्त्व के अनुकूल अच्छी तकनीक द्वारा उत्पादित किए गए हों।

यू.पी.ओ.वी. सम्मेलन १९७८ एवं १९९१ नए सदस्यों को पादप संरक्षण प्राप्त करने हेतु शुरू में कम से शुरुआत करने की अनुमति प्रदान करते हैं। हमें भी शुरुआत में पाँच से दस प्रजातियों के संरक्षण की बात करनी चाहिए। ये प्रजातियाँ भी सही रूप से नए कानून में सूचीबद्ध हों एवं इसे सरकार को अधिसूचित करने हेतु नहीं छोड़ देना चाहिए। साथ ही सरकार को इस कानून की

भारत को पादप किस्म संरक्षण व्यवस्था बनाने का कोई भी अनुभव नहीं है। एक सरल एवं सहज विधेयक सभी संबद्ध पक्षों के हित में होगा। साथ ही भविष्य में विश्व व्यापार संगठनों के द्वारा ट्रिप्स आदि समझौते में परिवर्तन से उत्पन्न समस्याओं का सही एवं अनुकूल ढंग से समावेश किया जा सकेगा। इसी बीच सरकार को भी पादप किस्मों के अनुलिपिकरण का काम तीव्र कर देना चाहिए।

सीमा का विस्तार अन्य पादपों पर भी विभि क्रमों में एवं १०-१५ वर्षों के कालावधि करना चाहिए। हमारा विचार यह होना चाहि कि वैसे सभी पौधों की किस्में जो हमारं खाद्य-सुरक्षा से जुड़ी हैं मसलन-अनाज सब्जियाँ, फल को तत्काल छूट प्रदान किय जाए। संरक्षण की सीमा में अभी केवल फूलों, सजावटी पौधों, मसाले, चाय, कॉफी रबर आदि को लिया जाना चाहिए। इतने कम क्षेत्रों को संरक्षण की सीमा में लेने का महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि अभी हमारे पास इन सभी प्रकार के किस्मों के विशेष रूप से निर्मित संकेतक आँकड़े तैयार नहीं हैं। ये आँकड़े तैयार न होने की स्थिति में हम अगर इन पर जो आम जनता हैं विशेषाधिकार प्राप्त करने में झूठ। भी साबित हो सकते हैं। इसके अलावा केवल नयी किस्मों को इसमें सम्मिलित किया जाए नकि पुरानी किस्मों और उपउत्पाद किस्मों को। 'सुई जेनेरिस' पद्धति हमारे सरकार/संसद द्वारा अवश्य प्रयोग किया जाए ताकि अधिक से अधिक व्यापकता की संभावना को सीमित किया जा सके।

किसान अधिकार

पुनरीक्षित विधेयक के भाग ३९(१) के उपभाग (४) में किसानों के अधिकार की बात कहीं गई है, जो निम्न है –

३९(१) (४) – "एक किसान इस

अधिनियम के लागू होने के बाद भी अपने कृषि उत्पादों, जिसमें वह बीज भी है जो इस अधिनियम द्वारा संरक्षित है, को बचाने, प्रयोग करने-बोने, दोबारा बोने, विनिमय, साझा या विक्रय करने हेतु उसी प्रकार अधिकृत माना जाएगा जिस प्रकार वह इस अधिनियम से पूर्व में करता था। लेकिन एक किसान इस अधिनियम के तहत संरक्षित किसी भी ब्रांड के बीज किस्मों को बेचने का हकदार नहीं होगा।''

उपर्युक्त प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि किसान उन बीजों को बेचने में सक्षम नहीं होगा जो संरक्षित किस्म के हैं या जिस बीज को उसका अधिकार रखने वाला उसे किसी खास ब्रांड के नाम से बेच रहा है। इस विधेयक के अनुच्छेद १७ के कारण किसान संरक्षित किस्मों के उन बीजों को भी नहीं बेच सकता है जो जरूरत से अधिक है। ऐसे बीजों को बिक्री के समय उसके प्रदत्त नामों से पहचानना महत्त्वपूर्ण है।

अनुच्छेद ३९(१) के उपभाग (४) में निम्न विवरण है – ''धारा (५) हेतु, ब्रांड बीज का अर्थ ऐसे बीजों से है जो डिब्बा-बंद या थैला-बंद हो एवं उस पर इस अधिनियम के तहत संरक्षित बीज किस्म लिखा हो।

यह अधिनियम पुन: अपने किसान विरोधी स्वरूप को स्पष्ट करता है एवं अतिरिक्त बीज की बिक्री किसानों के लिए एक समस्या बनी रहेगी।

आकस्मिक रूप से एफ.ए.ओ. के एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में किसानों के अधिकार को गैर बाध्यकारी शर्तों के रूप में स्वीकार किया गया। तो प्रश्न उठता है कि किसानों के अधिकार को किस विशेष तरीके से प्रस्तावित कानून में सम्मिलित किया जाए ताकि उनका अधिकार सुरक्षित रहे। क्योंकि ट्रिप्स समझौतो केवल विशेषाधिकार प्राप्त पादप प्रजनकों के हित को ही देखता है।

इस स्थिति में जब सारी परिस्थितियाँ किसान हित के प्रतिकूल हैं, केवल एक पक्ष जिस पर ज्यादा जोर देने की जरूरत है – वह है कि भारतीय किसान अपने उन सभी अधिकारों को उसी रूप में उपयोग करते रहें जिस तरह वे इस विधेयक से पूर्व करते थे।

अगर कोई किसान नयी संरक्षित किस्मों का वाणिज्यिक उपयोग करना चाहता है तो उसे इस कार्य के लिए आवश्यक लाइसेंस प्राप्त करना होगा। यह कार्य विधेयक की सीमा क्षेत्र से बाहर होगा।

लाभांश हिस्सा : यह विधेयक आदिवासी एवं ग्रामीण परिवारों एकल किसानों या स्थानीय समुदायों को लाभ में हिस्सेदारी की छूट देता है बशर्ते, ये लोग नयी संरक्षित बीज किस्म एवं उन लोगों के द्वारा विकसित बीज किस्म के बीज में संबंध को स्थापित कर दें। यह एक बहुत ही अच्छा प्रावधान है एवं इससे आदिवासी समुदायों द्वारा प्राप्त उपलब्धियों के बदले उन्हें उचित पारिश्रमिक मिलेगा। संबंधित संगठनों को इस दिशा में तत्परता से आगे आकर इस लाभकारी प्रावधानों से अपेक्षित एवं उचित लाभ हासिल करना होगा।

राष्ट्रीय जीन कोष : इस विधेयक का एक अन्य पक्ष है, राष्ट्रीय जीन कोष का निर्माण करना। जैव विविधता विधेयक २००० में भी इसी प्रकार के कोष निर्माण की व्यवस्था है। इस पर विचार करना आवश्यक है कि क्या एक ही उद्देश्य जिसमें काफी कम अंतर है, के लिए अलग-अलग जीन कोष की स्थापना करना आवश्यक है। यहाँ इस विधेयक के तहत किसी भी प्रकार के कोष-निर्माण को रोकना चाहिए। जैव विविधता विधेयक २००० में राष्ट्रीय स्तर पर राज्य एवं स्थानीय स्तर पर कई प्रकार के कोष निर्माण का उल्लेख है। इसलिए इस विधेयक को पादप किस्म संरक्षण के नियमन कार्य का दायित्व देना चाहिए।

- अपने देश में इस विधेयक को कानून बनाने से पहले विश्व व्यापार संगठन द्वारा ट्रिप्स के धारा २७(३)(बी) के पुनरावलोकन से उत्पन्न परिणामों एवं प्रभावों की प्रतीक्षा करना चाहिए।
- शुरु में विशेषाधिकार संरक्षण की संभावना को १० पादप प्रजातियों तक ही सीमित रखना चाहिए।
- विशेष अधिकार उसी पादप किस्म को मिलना चाहिए जो नयापन अलग एवं टिकाऊ होने की शर्त पूरी करता हो। प्रचलित, उप-उत्पादित एवं किसान का स्वयं की किस्म पर किसी भी प्रकार के विशेष अधिकार देने की व्यवस्था प्रभावी रूप से बंद हो।
- किसानों को बौद्धिक संपदा अधिकार व्यवस्था से पूर्णतः अलग रखा जाए। साथ ही उसे अतिरिक्त बीज बेचने का अधिकार भी सहजता से प्रदान किया जाए।
- राष्ट्रीय जीन कोष पर भी जैव विविधता विधेयक में उल्लिखित बहुकोषीय व्यवस्था के मद्देनजर पुनर्विचार किया जाए।
- नियमन कार्य के लिए वैधानिक निकाय के गठन पर भी पुनर्विचार करना आवश्यक है एवं यह कार्य सरकारी कार्यकारिणी द्वारा किया जाना चाहिए। एक अति उच्च अधिकार प्राप्त 'पादप किस्म महानिबंधक' की स्थापना होनी चाहिए।
- आवश्यक लाइसेंस प्रदान करने के विरुद्ध अपीलीय व्यवस्था बंद होनी चाहिए।

संगठनात्मक व्यवस्था

यह विधेयक एक वैधानिक निकाय के गठन की व्यवस्था देता है जो लगातार अस्तित्व में रहे एवं जिसका एक सामान्य मुहर हो। इस निकाय में एक अध्यक्ष एवं १५ अन्य सदस्य हों, साथ ही कार्यालय बाह्य सदस्यों की संख्या भी काफी हो। इसमें विचारणीय प्रश्न यह है कि यह संगठन एक वैधानिक निकाय होना चाहिए या उसके बदले सरकारी कार्यकारी हो। औद्योगिक पेटेंट हेतु गठित पेटेंट अधिनियम, १९७० में यह व्यवस्था है कि आरेख, ट्रेड मार्क के पेटेंट हेतु पेटेंट महानियंत्रक का पद हो। इसी आधार पर पादप-प्रजाति के संरक्षण

Scanned with OKEN Scanner

हेतु भी व्यवस्था करना उचित होगा। संघ लोक सेवा आयोग से संबंधित एवं सरकार द्वारा एक अति उच्च अधिकार प्राप्त 'पादप किस्म महानिबंधक' की व्यवस्था करना सबसे उचित होगा।

आवश्यक लाइसेंस प्रणाली

पुनर्लिखित विधेयक के अध्याय VII में एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है – आवश्यक लाइसेंस प्रणाली की व्यवस्था का। जैसा कि इस विधेयक के अनुच्छेद ४७ में कहा गया है कि आवश्यक लाइसेंस प्रणाली जनहित हेतु सुरक्षा का काम होगा। अनुच्छेद ५० अनुसार किसी भी अधिकारी को आवश्यक लाइसेंस के अवधि के निर्धारण का अधिकार नहीं होना चाहिए। साथ ही आवश्यक लाइसेंस की अनुमति के विरुद्ध अपील करने की व्यवस्था अनुच्छेद ५६(१)(डी) के तहत मिलना चाहिए।

चूँकि अदालत या न्यायाधिकरण में अपील की सुनवाई में काफी विलम्ब होता है, उस स्थिति में इस प्रकार का कोई भी लाइसेंस निष्प्रभावी रहेगा। इस तरह अपील करने की व्यवस्था जनहित में कुछ भी लाभदायक सिद्ध नहीं हो पाएगी क्योंकि इस अवधि में अन्य स्रोतों से उचित मूल्य पर तुरंत संरक्षित बीज उपलब्ध नहीं हो पाएगा।

इस संदर्भ में यह अपेक्षित है कि एक ऐसी व्यवस्था पर विचार करें जिसमें 'अधिकार का लाइसेंस' की व्यवस्था हो एवं उसे किसानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों को प्रदान करने की व्यवस्था हो।

व्यवस्था प्रभाव

पादप किस्मों पर भी बौद्धिक संपदा अधिकार का लागू होने से उसके स्वाभाविक प्रभाव होंगे। वर्तमान में चूँकि हमारे पास पादप किस्म के संरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है अत: अन्य देशों में संरक्षित बीजों को यहाँ व्यापारी मुक्त रूप से आयात कर उसे यहाँ के बाजार में बेचते हैं। जब हमारे देश में बौद्धिक संपदा अधिकार व्यवस्था लागू होगी तो अधिकृत व्यक्ति अपने संरक्षित बीजों को बाजार में एकाधिकार भाव से ऊँचे दामों पर बेचेगा। नए बीज जो विदेशों से आते हैं वह वैसे ही काफी महँगे होते हैं उस पर भी अगर उनका एकाधिकार हुआ तो वह किसान के लिए काफी महँगे हो जाएँगे। आयातक आज इन बीजों को बहुगुणित करते हैं। अत: पादप किस्म हेतु बौद्धिक संपदा अधिकार लागू होने पर हम लोगों को एक तरफ ऊँचे दामों का भार झेलना पड़ेगा एवं दूसरी तरफ उन बीजों का अभाव भी बना रहेगा।

अन्य पहलू शोध एवं विकास से जुड़े हैं। बीज व्यापार से जुड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पास अत्यधिक धन होता है जिसे वह शोध हेतु लगाते हैं। वह हमेशा नए बीज को इस देश में लाने में आगे रहते हैं। ठीक इसके विपरीत भारत के सार्वजनिक क्षेत्रों की कंपनियों के पास हमेशा अर्थाभाव के कारण शोध का कार्य नहीं हो पाता है। नए बीज के शोध कार्य में निजी क्षेत्रों का योगदान नगण्य प्राय है। वे किसी भी हालात में बहुराष्ट्रीय कंपनियों से प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक सकते हैं। नए पादप किस्म के संरक्षण में बौद्धिक संपदा अधिकार व्यवस्था स्वदेशी कृषि व्यवस्था को बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भर बना देगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त सुझावों को स्वीकार कर लेने के बाद पादप किस्म संरक्षण एवं किसान अधिकार का यह पुनर्लिखित विधेयक एक सहज विधेयक हो जाएगा एवं इससे प्रयोग एवं परिचालन संबंधी सारी समस्याएँ खत्म हो जाएँगी। भारत को पादप किस्म संरक्षण व्यवस्था बनाने का कोई भी अनुभव नहीं है। एक सरल एवं सहज विधेयक सभी संबद्ध पक्षों के हित में होगा। साथ ही भविष्य में विश्व व्यापार संगठनों के द्वारा ट्रिप्स आदि समझौते में परिवर्तन से उत्पन्न समस्याओं का सही एवं अनुकूल ढंग से समावेश किया जा सकेगा। इसी बीच सरकार को भी पादप किस्मों के अनुलिपिकरण का काम तीव्र कर देना चाहिए। अंतत: यू.पी.ओ.वी. सम्मेलन से जुड़ने पर भी पुनर्विचार करना आवश्यक है क्योंकि एक बार इससे जुड़ने के बाद किसानों का हित एवं अधिकार की रक्षा करना संभव नहीं हो पाएगा। ■

भारत ने अमेरिका के एंटी डंपिंग कानून के खिलाफ डब्ल्यू.टी.ओ. में शिकायत दर्ज कराई

भारत ने जापान तथा १५ सदस्यीय यूरोपीय संघ के साथ मिलकर एंटी डंपिंग पर नए अमरीकी कानून के खिलाफ विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) में शिकायत दर्ज कराई है।

इस शिकायत के जरिए पिछले माह अमरीकी काँग्रेस द्वारा एंटी डंपिंग कानून में पारित किए गए उस संशोधन को चुनौती दी गई है जिसके तहत अमरीकी बाजार में उत्पादन लागत से कम दरों पर विदेशी वस्तुओं को बेचने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। इसके तहत कम दरों पर वस्तुएँ बेचने से प्रभावित अमरीकी उद्योग को ही एंटी डंपिंग शुल्क से प्राप्त राशि मुहैया कराई जाएगी, जबकि पहले यह धन राजकोष में डाल दिया जाता था। इस शिकायत में भारत ने जिन अन्य देशों के साथ मिलकर कदम उठाया है उनमें आस्ट्रेलिया, ब्राजील, चिली, इंडोनेशिया, थाईलैंड तथा दक्षिण कोरिया प्रमुख हैं। उल्लेखनीय है कि इनमें से ज्यादातर देश ऐसे हैं जिनके द्वारा उत्पादन लागत से कम दर पर अमरीकी बाजार में इस्पात बेचने पर दंडात्मक शुल्क थोपा गया है। डब्ल्यू.टी.ओ. के अधिकारियों के मुताबिक यदि अगले ६० दिनों के भीतर अमरीका तथा शिकायत दर्ज कराने वाले देश किसी समझौते को करने में असफल रहे तो उनके संगठन का तीन सदस्यीय विवाद निपटान पैनल इस संयुक्त शिकायत की समीक्षा करेगा। भारत द्वारा अन्य देशों के साथ मिलकर दर्ज कराई गई इस शिकायत में आरोप लगाया गया है कि उपर्युक्त राशि को यदि प्रभावित अमरीकी उद्योग को मुहैया करा दिया गया तो यह एक तरह की उसके लिए सब्सिडी का रूप अख्तियार कर लेगी, जबकि मुक्त व्यापार के अंतरराष्ट्रीय नियमों में इस तरह की सब्सिडी देने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। ■

Scanned with OKEN Scanner

परंपरा को बचाने की पहल : राष्ट्रीय पारंपरिक ज्ञान डिजिटल लाइब्रेरी

■ नलिन चौहान

देश में मौजूद विभिन्न संगठनों और उनकी ज्ञान संपदा को लेकर संकलित जानकारी के न होने, भाषा की भिन्नता, वर्गीकरण और समन्वित दृष्टि के अभाव जैसे दुरूह मुद्दों से निपटने के लिए एक निश्चित समय सीमा के भीतर टी.के.डी.एल. को तैयार करने के लिए एक कारगर रणनीति तैयार करनी होगी।

हाल के वर्षों में भारत को अपनी जड़ी-बूटियों और औषधीय पौधों की अपनी पारंपरिक विरासत के विशेषाधिकार को विदेशियों के चंगुल में जाने से रोकने के लिए जितनी कानूनी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी हैं, उससे सचेत होते हुए अब भारत ने भविष्य में पेटेंट चोरी को रोकने की दृष्टि से अपनी समृद्ध जैव-विविधता से संबंधित जानकारी को संकलित करने की एक महत्त्वाकांक्षी योजना तैयार की है।

भारत सरकार ने राष्ट्रीय पारंपरिक ज्ञान डिजिटल रूप में संकलित करने की एक बृहत और महत्त्वाकांक्षी योजना तैयार की है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के पारंपरिक ज्ञान को पेटेंट चोरी से बचाना है।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद के महानिदेशक रघुनाथ अनंत माशेलकर कहते हैं, ''इससे न केवल विदेशी कंपनियों और व्यक्तियों के भारतीय पारंपरिक ज्ञान को पेटेंट करवाने के प्रयासों में कमी आएगी बल्कि भारतीय पारंपरिक ज्ञान को भी दुनिया-भर के सामने लाने में मदद मिलेगी क्योंकि टी.के. डी.एल. इंटरनेट पर उपलब्ध होगी।''

टी.के.डी.एल. की स्थापना के बाद दुनिया भर के पेटेंट कार्यालय डिजिटल रूप में भारतीय पारंपरिक ज्ञान की जानकारी प्राप्त करने में सक्षम होंगे। योजना आयोग के विशेष कार्याधिकारी (ढाँचागत टास्कफोर्स) अरविंद कुमार के अनुसार, ''इस योजना का उद्देश्य भारत में सदियों से व्यक्ति और समाज द्वारा संचित पारंपरिक ज्ञान को हो रहे नुकसान को कम करना भी है।''

भारत को पश्चिमी देशों में हल्दी, बासमती, नीम, जामुन और करेले पर अंधाधुंध तरीके से करवाए गए गलत पेटेंटों को लेकर लंबी कानूनी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी हैं, इसी के परिणामस्वरूप टी.के.डी.एल. की योजना सामने आई है।

देश के औषधीय पौधों की संपदा की सुरक्षा के लिए योजना आयोग ने इस साल जनवरी में 'औषधीय पौधों के संरक्षण और संतुलित उपयोग' के लिए एक टास्कफोर्स का गठन किया था। टास्कफोर्स ने इस वर्ष मार्च में केन्द्र सरकार को सौंपी अपनी रिपोर्ट में एक भारतीय पारंपरिक ज्ञान डिजिटल लाइब्रेरी स्थापित करने की सिफारिश की थी।

रिपोर्ट के अनुसार, ''हमारे परंपरागत ज्ञान को विदेशियों के पेटेंट के जाल से बचाने के लिए अंतरराष्ट्रीय मानदंडों का उपयोग करते हुए समस्त उपलब्ध सूचना व्यवस्थित तरीके से डिजिटल तौर पर संकलित की जानी चाहिए, जिससे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर उसका समान रूप से उपयोग किया जा सके।''

दुनियाभर में भारत औषधीय जड़ी-बूटियों और पौधों के बड़े-भंडारों में से एक है। केन्द्रीय पर्यावरण और वन मंत्रालय के एक सर्वेक्षण के मुताबिक ग्रामीण समाज देश में पाए जाने वाले ३३,००० पौधों में से ८,००० पौधों के औषधीय उपयोग से परिचित है। जबकि इसके उलट आधुनिक विज्ञान इनके उपयोग से अनजान है। अरविन्द कुमार कहते हैं, ''देशभर में ग्रामीण समाज औषधीय पौधों पर आधारित करीब २५,००० नुस्खों के प्रयोग जानता है। उनमें से करीब १०,००० तयशुदा नुस्खे देसी चिकित्सीय पुस्तकों में उपलब्ध हैं।''

केन्द्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के भारतीय चिकित्सा पद्धति विभाग की सचिव शैलजा चन्द्रा कहती हैं, ''हाल यह है कि अमेरिकी पेटेंट कार्यालय तक ने विभाग के औषधीय पौधों से संबंधित जानकारी को एकत्र करने के प्रयास की प्रशंसा की है। इस कार्यक्रम के तहत आयुर्वेद के करीब ३५,००० नुस्खों को संकलित किया जाएगा।''

जर्मनी में नीम पेटेंट के खिलाफ सफल लड़ाई लड़ने वाले दल की एक प्रमुख सदस्या डॉ. ज्योत्सना कहती हैं, ''उम्मीद की जा सकती है कि एक बार टी.के.डी.एल. की योजना पूरी होने के बाद विदेशी कंपनियों के नीम, करेला या जामुन को उनके औषधीय गुणों के कारण पेटेंट करवाने के प्रयास नही होंगे'' पर साथ ही वे कहती हैं, ''इससे देश में पेटेंट को लेकर जारी अज्ञानता और संशय दूर होगा, जो कि एक गहरी चिंता का विषय है।''

टी.के.डी.एल. का लक्षित वर्ग पेटेंट जाँचकर्ता है, जो कि टी.के.डी.एल. का उपयोग खोज और जाँच-पड़ताल की दृष्टि से करेगा। सामान्य रूप से पेटेंट जाँचकर्ता पेटेंट प्रदान करने से पूर्व उसकी नवीनता, विलक्षणता और उपयोगिता की जाँच-पड़ताल करता है। किसी पेटेंट कार्यालय में किए जाने वाले पेटेंट आवदेन में न्यूनतम रूप से ''आविष्कारकर्ता, शीर्षक, विवरण, क्रमांक आवेदन की तिथि, सार-संक्षेप और प्रमुख शब्दों'' की जानकारी होनी चाहिए। ज्योत्सना कहती हैं, ''यह इसलिए जरूरी है क्योंकि आवेदन के आधार पर ही जाँच की जाती है और पड़ताल के लिए इन प्रमुख तथ्यों का उपयोग किया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

टी.के.डी.एल. को कम्प्यूटर पर वेब पेज, जिससे बिना कोई शुल्क किए जानकारी प्राप्त की जा सकेगी, पर प्रस्तुत करने के लिहाज से तैयार किया जाएगा, जिस पर एक ही समय में एक से अधिक तथ्यों के बारे में जानकारी मौजूद होगी। टी.के.डी.एल. पर किसी भी प्रकार की जानकारी खोजने की दृष्टि से आधुनिक और परम्परागत नामों के पर्यायवाची शब्दों के डिजिटल कोश निर्मित करने की नितांत आवश्यकता होगी, जिससे परंपरागत नामों के साथ-साथ आधुनिक नामों से भी जाँच संभव हो सके।

इन उल्लेखित पहलुओं को लेकर विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (वाइपो) की भागीदारी से दुनिया भर के पेटेंट कार्यालयों के टी.के.डी.एल. के उपयोग की बात सुनिश्चित हो जाएगी, साथ ही, इससे टी.के.डी.एल. की सामग्री में पूर्व-प्रचलित ज्ञान भी शामिल होगा।

माशेलकर कहते हैं, ''अमेरिका और कुछ अन्य देश पेटेंट प्रदान किए जाने से पूर्व आपत्तियाँ आमंत्रित नहीं करते हैं। ऐसे में जहाँ, पेटेंट दिए जाने से पहले आपत्ति दर्ज करने की सुविधा उपलब्ध नहीं है, वहाँ टी.के.डी.एल. ही एकमात्र उपाय है क्योंकि पेटेंट प्रदान होने के बाद उसे चुनौती देना खासा-महँगा मामला है।'' पर साथ ही वे कहते हैं, ''पड़ताल के समय पेटेंट जाँचकर्ता के समक्ष टी.के.डी.एल. के उपलब्ध न होने की सूरत में संबंधित देश पेटेंट को चुनौती देने के चरण में भी टी.के.डी.एल. का उपयोग कर सकता है।''

देश में मौजूद विभिन्न संगठनों और उनकी ज्ञान संपदा को लेकर संकलित जानकारी के न होने, भाषा की भिन्नता, वर्गीकरण और समन्वित दृष्टि के अभाव जैसे दुरूह मुद्दों से निपटने के लिए एक निश्चित समय सीमा के भीतर टी.के.डी.एल. को तैयार करने के लिए एक कारगर रणनीति तैयार करनी होगी।

टी.के.डी.एल. के क्रियान्वयन के साथ-साथ समय की माँग है कि भारतीय जड़ी-बूटियों और पौधों के औषधीय गुणों तथा अन्य उपयोगों से संबंधित पारंपरिक ज्ञान को संकलित किया जाए। और साथ ही इस जानकारी को सहज उपलब्धता के लिए कम्प्यूटर डाटाबेस की जानकारी के रूप में परिवर्तित किया जाए। माशेलकर के अनुसार,

> ***"देश के औषधीय पौधों की की संपदा की सुरक्षा के लिए योजना आयोग ने इस साल जनवरी में 'औषधीय पौधों के संरक्षण और संतुलित उपयोग' के लिए एक टास्कफोर्स का गठन किया था। टास्कफोर्स ने इस वर्ष मार्च में केन्द्र सरकार को सौंपी अपनी रिपोर्ट में एक भारतीय पारंपरिक ज्ञान डिजिटल लाइब्रेरी स्थापित करने की सिफारिश की थी।"***

''विशेषज्ञों का एक दल टी.के.डी.एल. के लिए आँकड़ों का संकलन, वर्गीकरण और दस्तावेजों का पुनर्लेखन का कार्य करेगा। इस दल में वैज्ञानिक, सूचना प्रौद्योगिकी और पेटेंट विशेषज्ञों के साथ-साथ परंपरागत औषधि शास्त्र के विद्वान भी होंगे।''

इस क्षेत्र में मुख्य कार्य बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय, केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली और राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर के विशेषज्ञ दलों की सहायता से किया जाएगा। इस संबंध में सूचना एकत्र करने के लिए 'भारत भाष्य रत्नाकर', 'चरक संहिता' और 'सारंगधार संहिता' जैसे प्राचीन ग्रंथों का उपयोग किया जाएगा। इन दस्तावेजों के लिप्यांतरण के साथ-साथ अनुवाद के लिए व्यापक स्तर पर प्रयास करने पड़ेंगे।

एक बार इस तरह की जानकारी को डाटाबेस की जानकारी पर उपलब्ध होने पर समस्त सूचना को दुनिया भर के देशों के पेटेंट कार्यालयों के लाभ के लिए प्रस्तावित वाइपोनेट पर डाला जा सकता है।

माशेलकर कहते हैं, ''बौद्धिक संपदा कानून के कड़े तंत्र की स्थापना, दस्तावेजी मूल्यांकन और संरक्षण तथा उसके लाभदायक उपयोग के लिए अथाह प्रयास किए जाने की जरूरत है। एक कमजोर आधारभूत ढाँचे, दस्तावेजों के अपर्याप्त संकलन, सार्वजनिक अज्ञानता और पेटेंट संबंधी नीतियों के निर्धारण और क्रियान्वयन में देरी से भारत को हानि होगी इसलिए हमें इस दिशा में तेजी से काम करना होगा।'' ■

चीनी सामान रोकने के लिए आयात शुल्क बढ़ेगा

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इन खबरों पर चिंता जाहिर की है कि चीन में बने सामान से भारत के बाजार अटे पड़े हैं। उन्होंने कहा कि वह इस तरह की डंपिंग से चिंतित है, पर कोशिश की जा रही है कि इस प्रवृत्ति पर रोक लगे। इसके लिए कई तरह की चीजों पर आयात शुल्क बढ़ा दिया गया है। कई पर बढ़ाया जा रहा है। इससे सस्ते आयात पर रोक लगेगी।

प्रधानमंत्री ने अपनी चिंता अपने चुनाव क्षेत्र लखनऊ से आए एक प्रतिनिधिमंडल से बात करते हुए जताई। उन्होंने कहा कि चीन में बने खिलौने, रेडियो और अन्य कुछ चीजों की भारतीय बाजारों में भरमार हो गई है, यह बात सही है। पर इसके लिए कुछ हद तक हम लोग भी जिम्मेदार हैं। हमें स्वदेशी की भावना का अनुसरण कर विदेशी चीजों से अलग रहने की आदत बनानी चाहिए। इसके विदेशी सामान को खरीदने की प्रवृत्ति अपने आप कम होती जाएगी।

उन्होंने कहा कि स्वदेशी भावना को बढ़ा कर ही हम अपनी उन चीजों को प्रोत्साहन दे सकेंगे, जिन्हें लघु क्षेत्र में बनाया जाता है। वाजपेयी ने कहा कि आगामी बजट में भी ऐसे इंतजाम किए जाएंगे, जिससे विदेशी सामान के आयात पर अंकुश लगाया जा सके। हालाँकि उन्होंने यह कोई संकेत नहीं दिया कि आने वाला बजट किस तरह का होगा। हाँ, उनका कहना था कि आयात शुल्क बढ़ा कर ही सस्ते आयात में अवरोध लाया जा सकता है। उन्होंने कहा कि कुछेक चीजों पर ३०० फीसदी तक आयात शुल्क लगाया गया है। ■

Scanned with OKEN Scanner

स्वदेशी कृषि एवं गोरक्षण

यह वैतरणी और कुछ नहीं अपितु किसी की मृत्यु के उपरांत उसके बच्चों में संपत्ति वितरण की सामान्य प्रक्रिया है और गाय जो स्वयं संपत्ति और संपन्नता के निर्माण की अधिष्टात्री माता है वही व्यक्ति को मृत्यु के बाद वितरण की वैतरणी को संतोषपूर्वक पार लगा देती है। यही इस मिथक का सरल सा वास्तविक रूप रहा है।

■ अतुल रावत

भौतिकी के आधुनिक काल के महानतम वैज्ञानिक एलबर्ट आइन्स्टीन वैज्ञानिक के साथ-साथ एक भविष्यद्रष्टा भी थे। उन्होंने भारत को आगाह करते हुए कहा था कि उसे अपनी कृषि के लिए रासायनिक खाद तथा ट्रैक्टर आधारित पद्धति नहीं अपनानी चाहिए। उनका मानना था कि इस पद्धति से भूमि की उर्वरा शक्ति का क्षय होता है। उनका अमरीका के विषय में यह आँकलन था कि वहाँ की धरती की उर्वरा शक्ति आने वाले चार सौ वर्षों में समाप्त हो जाएगी। दूसरी ओर देखा जाए तो भारतीय धरती की उर्वरा शक्ति हजारों वर्षों से चली आ रही कृषि पद्धति के कारण अक्षय बनी रही है। आइन्स्टीन ने यह भी कहा था कि जिस धरती पर ट्रैक्टर व रासायनिक पद्धति से कृषि होगी वहाँ एक हजार वर्ष बाद घास का तिनका तक न उग सकेगा। स्वदेशी की श्रेष्ठता का इससे बढ़कर प्रतिपादन मिलना लगभग असंभव ही है।

किन्तु पिछले कुछ वर्षों से लगातार घट रहे कृषि उत्पादन ने दुर्भाग्यवश आइन्स्टीन की चेतावनी को सही सिद्ध कर दिया है। उसमें कोई गलती हुई है तो केवल समय सीमा की। आइन्स्टीन के आंकलन की अपेक्षा यह संकट कहीं अधिक जल्दी आ गया है। कम से कम भारत के संदर्भ में तो यह एकदम सही किंतु समय पूर्व सिद्ध हुआ है।

जिन लोगों के ट्रैक्टर जन्य रासायनिक कृषि में निहित स्वार्थ हैं उन्हें पहचानना एक अत्यंत महत्व का विषय है। वास्तव में पश्चिम की अन्य प्रणालियों की ही भाँति कृषि भी उनके लिए एक ऐसा उद्योग है जिससे व्यक्तिगत स्तर पर भारी लाभ कमाना होता है। अतिशय लाभ की यह मानसिकता केंद्रीकरण को जन्म भी देती है और पोषित भी करती है। दूसरी ओर केंद्रीकरण के द्वारा यह इच्छा और भी बलवती और अमर्यादित होती जाती है और अंततः पूंजीवादी कृषि व्यवस्था भारत जैसे विशाल और बहुलतावादी राष्ट्र के लिए पूर्णतः अनुपयुक्त है।

भारत के लिए कृषि का सनातन काल से चला आ रहा स्वदेशी प्रतिरूप ही उत्तम है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत के महान स्वदेशी विचारक पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय कृषि के सर्वांगीण विकास की बात करते थे। पश्चिमी सोच जिसमें कृषि को उद्योग माना जाता है, के विपरीत उनका कहना था कि कृषि का विकास ऐसा होना चाहिए कि वह अधिकतम उद्योगों का आधार बन सके। देश का विराट औद्योगीकरण बिना व्यापक और सक्षम कृषि के संभव नहीं है और वह कृषि बिना धरती की उर्वरता अक्षय बनाए रखे नहीं हो सकती। पश्चिमी प्रकार की ट्रैक्टर आधारित व रासायनिक कृषि भूमि की उर्वरता को लील रही है अतः गोवंश आधारित सनातन काल से चली आ रही कृषि ही सही विकल्प है। इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि इस प्रकार की कृषि में नवीनता या आधुनिकता के लिए कोई संभावना नहीं है। इसके ठीक विपरीत इसमें नवीन शोध और क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं के लिए आवश्यक लोच कहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध है। चाहे विषय कृषि यंत्रों का हो या खादों का अथवा कीटनाशकों का पारंपरिक कृषि में शोध और नवाचार अपनाने की असीम संभावनाएँ हैं।

गोवंश आधारित कृषि के लिए बड़ी समस्याओं में एक प्राथमिकता के आधार पर हल किए जाने के लिए मुँह बाए खड़ी समस्या चारे की है। देश में चारे की अनुपलब्धता के कारण कृषक यह सोचने पर बाध्य हो जाता है कि खड़ा ट्रैक्टर चारा तो नहीं माँगता। भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान झांसी के वैज्ञानिक बृजेश कुमार भदौरिया व अरविन्द सिंह नेगी ने इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षिक करते हुए लिखा है कि देश में ४३ प्रतिशत पशु चारे के अभाव में रहते हैं। चारे की इस कमी के कारण पशु कुपोषण के शिकार हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप वे अपनी पूर्ण उत्पादन क्षमता प्राप्त नहीं कर पाते। इस कारण उन्हें रखना या उन पर आधारित कृषि से देश का पेट भरना कठिन हो जाता है। इन दोनों वैज्ञानिकों का मानना है कि भारत में उपलब्ध जैव विविधता के कारण चारे के इतने स्रोत उपलब्ध हैं कि यदि उनका समुचित उपयोग किया जाए तो चारे की कमी को काफी हद तक पूरा किया जा सकता है।

यदि इस समस्या का समाधान कर लिया जाए तो सनातन काल से चली आ रही गोवंश आधारित स्वदेशी पद्धति की कृषि विकल्प नहीं अपितु मुख्य धारा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकती है। गोवंश और उस पर आधारित अर्थव्यवस्था के बहुत से सूत्र अब भी उपलब्ध हैं। गाय के साथ भारतीय मानस का जुड़ाव हर स्तर पर हर समय रहा है। जहाँ भारतीय परंपरा ने गऊ को माँ कहकर समाज में उसे

Scanned with OKEN Scanner

प्रतिष्ठित किया है। वहीं उसके आर्थिक पक्ष से भी वह कभी अनभिज्ञ नहीं रहा। गाय की अर्थव्यवस्था धर्म का अनुसरण करने वाले पुरुषार्थ का हिस्सा है। वह कोरे स्वार्थ से अंधी अर्थरचना नहीं है। वह ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें मनुष्य, उसके परिवार, उसके समाज, उसके राष्ट्र और यहाँ तक कि समस्त विश्व के कल्याण की असीम संभावनाएँ छिपी हुई है।

भारतीय लोकजीवन में इस धारणा को परखने के लिए सर्वोत्तम उदाहरण एक मिथक के रूप में मिलता है। कहा जाता है कि मनुष्य मृत्यु के उपरांत गाय की पूँछ पकड़कर वैतरणी नामक एक नदी को पार करता है। यह बड़ा ही रोचक किन्तु सरल मिथक है। क्योंकि गाय और गोवंश ही हिंदू अर्थव्यवस्था का सदा से आधार रहा है इसीलिए वही एक व्यक्ति की संपन्नता का भी आधार था। संपन्नता ही किसी व्यक्ति के उपरांत उसके वंशजों में उसकी संपत्तिर के वितरण में सभी के संतोष का मूल है। यह वैतरणी और कुछ नहीं अपितु किसी की मृत्यु के उपरांत उसके बच्चों में संपत्ति वितरण की सामान्य प्रक्रिया है और गाय जो स्वयं संपत्ति और संपन्नता के निर्माण की अधिष्टात्री माता है वही व्यक्ति को मृत्यु के बाद वितरण की वैतरणी को संतोषपूर्वक पार लगा देती है। यही इस मिथक का सरल सा वास्तविक रूप रहा है।

अंग्रेजों द्वारा हमारी अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न करने से जो सबसे बड़ी हानि भारत की हुई वह इसमें आंकना तो सरल है कि वे यहाँ से कितनी संपत्ति लूट कर ले गए किंतु उससे बड़ी हानि तो उन्होंने भारत की अर्थरचना को समाप्त करके की। उसका आंकलन असंभव है। किंतु अभी भी भारतीय स्वदेशी अर्थरचना के कुछ सूत्र उपलब्ध है। उन पर आगे शोध और फिर उसका प्रयोग देश के अर्थजीवन में हो तभी भारत की संपन्नता लौट सकती है।

इस दिशा में देशभर में अलग-अलग स्थानों पर शोध और परीक्षण चल रहे हैं जिनके आशातीत सकारात्मक परिणाम निकल रहे हैं। कहा जाता है कि दूध देने की आयु समाप्त होने के बाद या दूध न दे सकने वाली गायों को मारना उचित है क्योंकि उनसे कोई आर्थिक

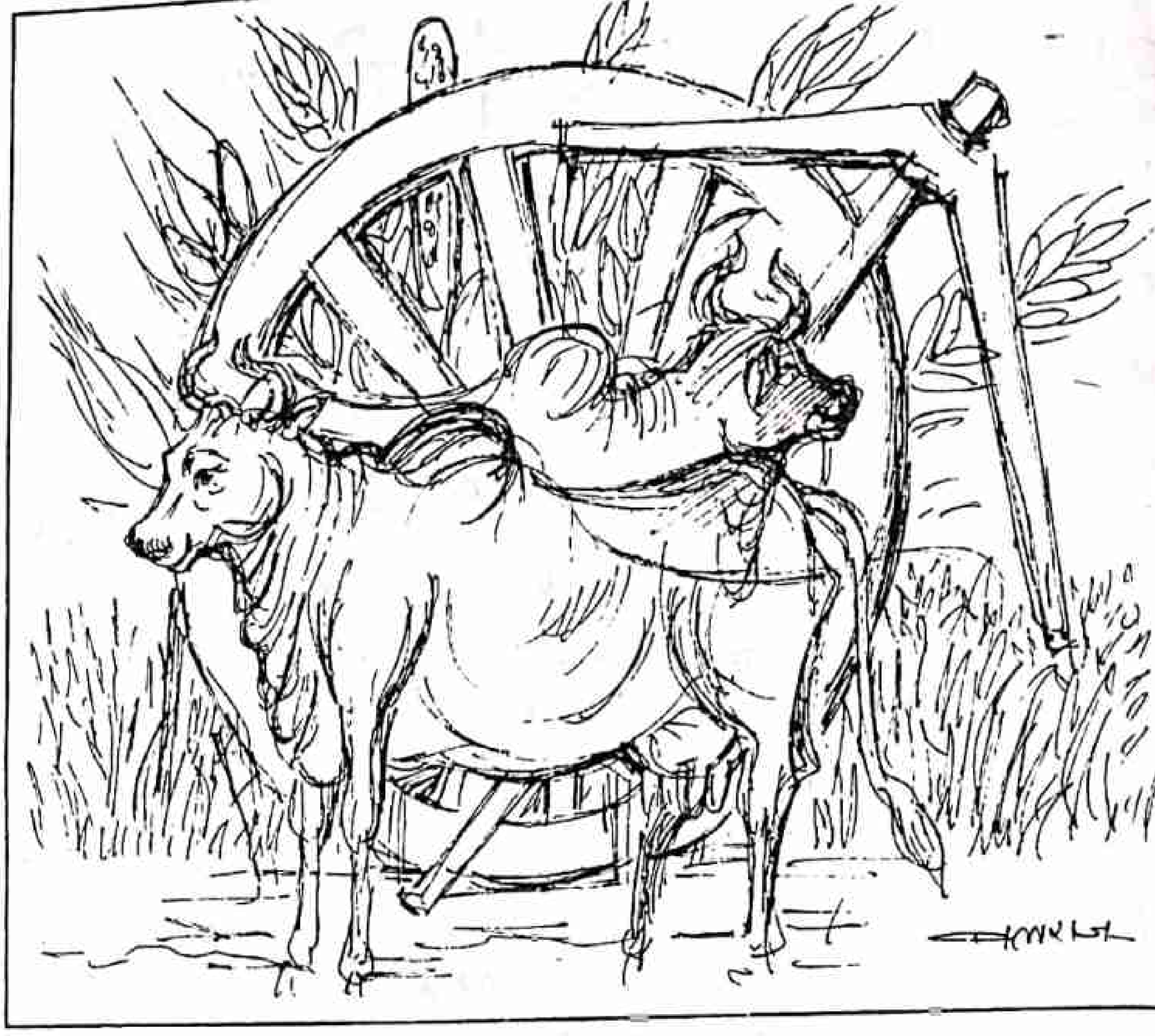

लाभ तो है नहीं, दूसरे जो लोग गोमांस भक्षण करते हैं उन्हें सस्ता भोजन प्राप्त हो जाता है। किन्तु वास्तव में यह तथ्य और वास्तविकता के विपरीत है। यदि गाय दूध न भी देती हो तो भी उसके गोबर से ही बहुत बड़ी मात्रा में जैविक खाद की प्राप्ति हो जाती है। महाराष्ट्र के नारायण देव राव पाण्ढरी पाण्डे नामक एक कृषक शोध कर्ता तथा सामाजिक कार्यकर्ता ने इसका हिसाब लगाया है। इन्हें सम्मान और स्नेह से नडेप काका कहते है। इनके द्वारा खोजी गई पद्धति से एक किलो गोबर से बीस

भारतीय लोकजीवन में इस धारणा को परखने के लिए सर्वोत्तम उदाहरण एक मिथक के रूप में मिलता है। कहा जाता है कि मनुष्य मृत्यु के उपरांत गाय की पूँछ पकड़कर वैतरणी नामक एक नदी को पार करता है। यह बड़ा ही रोचक किन्तु सरल मिथक है। क्योंकि गाय और गोवंश ही हिंदू अर्थव्यवस्था का सदा से आधार रहा है इसीलिए वही एक व्यक्ति की संपन्नता का भी आधार था।

किलो जैविक खाद तैयार की जा सकती है। यदि एक परिवार में गोवंश जो दूध न भी दे रहा हो और दिन भर में दस किलोग्राम गोबर उपलब्ध कराता हो तो प्रतिदिन दो सौ किलोग्राम जैविक खाद या वर्ष भर में १४.६ एकड़ भूमि के लिए जैविक खााद उत्पन्न करा सकता है। ज्ञातव्य है कि इतने ही क्षेत्र में लगायी जाने वाली रासायनिक खाद न केवल कृषि योग्य भूमि की गुणवत्ता घटाती है अपितु पर्यावरण विशेषत: भूजल का भी नाश करती है। हजारों रुपए उसके मूल्य पर जो व्यय होते हैं सो अलग।

इसके अलावा गोवंश पालने के अन्य आर्थिक लाभ अलग से हैं। ऊपर जिन नडेप काका की चर्चा की गई है उन्होंने केवल तीन गोवंश के जीवधारी पाले हुए हैं। इनसे प्राप्त सामग्री से वे साबुन, अंगराग, पाऊडर, कम्पोस्ट खाद, दीवार रंग, धूपबत्ती, दुग्ध व उसके अन्य अन्य उत्पादन आदि तथा गोमूत्र से प्राप्त औषधियों आदि से ढाई लाख रुपए वार्षिक के आसपास आय प्राप्त कर लेते हैं। उनके नाम पर चली नडेप कम्पोस्ट खाद महाराष्ट्र तथा राजस्थान सरकारों के कृषि विभागों तथा आई.आई.टी., दिल्ली तथा आई.पी.सी.एल., बड़ोदा से मान्यता प्राप्त है। नडेप काका की तरह देवलापार, नागपुर के गोविज्ञान अनुसंधान केंद्र में मात्र १४४ गोवंश जीवधारियों

पर आधारित उत्पादों से ५० परिवारों को रोजगार मिल रहा है। एक आंकलन के अनुसार गाँधी जी द्वारा चलाए गए चरखा आंदोलन से जितने लोगों को रोजगार मिला था, उससे अधिक रोजगार दूध न देने वाले गोवंश जीवधारियों से प्राप्त हो सकता है।

यह तो शोध पर आधारित आंकलन हैं किंतु इस समय भी पशुधन मानव संसाधनों के बाद देश का सबसे बड़ा संसाधन है। आज भी भारत में रेलगाड़ियों से अधिक माल ढुलाई बैलगाड़ियों द्वारा होती है। यह बिडम्बना ही है कि अबतक देश मे पशु संसाधन विकास मंत्रालय नहीं बना जबकि रेल जोकि पशुओं द्वारा प्रदत्त कई सेवाओं में से मात्र एक से भी कम उत्पादकता देश के लिए देती है उसके लिए अलग मंत्रालय है। पशुधन से देश की ६ से ७ प्रतिशत तक राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है। हमारा पशुधन हमें ४० हजार मेगावाट के बराबर शक्ति प्रदान करता है। देश में कुल विद्युत उत्पादन के अनुपात में देखा जाए तो उसके ७० प्रतिशत के बराबर ऊर्जा पशुधन भी पैदा कर देता है। करोड़ों गैलन गोमूत्र जो यों ही व्यर्थ चला जाता है, उत्तम कीटनाशक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

दुग्ध उत्पादन के ही क्षेत्र में देखें तो भारत आज विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश बन गया है। वर्ष १९९९-२००० में ७८० लाख टन का कीर्तिमान स्तर दुग्ध उत्पादन में प्राप्त किया गया। गाय के दूध की तुलना माँ के दूध के अलावा किसी अन्य श्रेष्ठ से श्रेष्ठ खाद्य पदार्थ से भी नहीं की जा सकती। जहाँ भगवान राम के पूर्वज महाराज दिलीप की गोभक्ति प्रसिद्ध है वहीं करुणावतार भगवान बुद्ध भी गाय को "गाँवों ना परमा मित्ता" कहकर प्रशंसा करते नहीं अघाते। गाय के दूध की ही खीर खिलाकर सुजाता ने भगवान बुद्ध की जान बचाई थी। भगवान महावीर तो स्वयं में अहिंसा के अवतार ही थे। वे गोरक्षा को मानव रक्षा मानते थे। हजरत मोहम्मद साहब भी गाय के दूध को रसायन, उसके घी को अमृत और उसके मांस को बीमारी मानते थे। वास्तव में गाय के दूध में भैंस की अपेक्षा दस गुना अधिक कैरोटीन बनाने की क्षमता होती है। यह पदार्थ शरीर में विटामीन 'ए' पैदा करता है और सर्वरोगनाशक होता है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक गोकरुणानिधि में लिखा है कि एक गाय अपने जीवनकाल में ४१०४०० मनुष्यों को एक समय का भोजन जुटाती है जबकि उसके मांस से मात्र ८० मनुष्य एक बार अपना पेट भर सकते हैं।

अंग्रेजों द्वारा हमारी अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न करने से जो सबसे बड़ी हानि भारत की हुई वह इसमें आंकना तो सरल है कि वे यहाँ से कितनी संपत्ति लूट कर ले गए किंतु उससे बड़ी हानि तो उन्होंने भारत की अर्थरचना को समाप्त करके की। उसका आंकलन असंभव है। किंतु अभी भी भारतीय स्वदेशी अर्थरचना के कुछ सूत्र उपलब्ध है। उन पर आगे शोध और फिर उसका प्रयोग देश के अर्थजीवन में हो तभी भारत की संपन्नता लौट सकती है।

गाय के इसी गुण के कारण मध्यकाल में हिंदुओं पर हुए धार्मिक जुल्मों से बचने में गाय ने बहुत मदद की। जब मुसलमान सुल्तानों और बादशाहों की सेनाएं निशस्त्र हिंदू गाँवों पर लोगों को मुसलमान बनाने के लिए आक्रमण करती थीं तो लोग अपना घर-बार गाँव छोड़कर अपनी गायों के साथ जंगलों में शरण ले लेते थे या पहाड़ों पर भाग जाते थे। प्रवास के इस काल में गऊ ही उनका सहारा होती थी। वयस्क तो यदि कन्दमूल या फल खा भी लेते थे किन्तु शिशुओं और बच्चों को तो मात्र गो दुग्ध का ही सहारा होता था। क्योंकि गाय के कारण हिंदू संघर्ष करने में सफल रहते थे इसीलिए मुस्लिम सेनाएँ बड़े स्तर पर गोवध करती थीं जिससे हिंदुओं को उनका सहारा न मिले। गाय और हिंदुओं के इसी वात्सल्यपूर्ण संबंध के कारण गाय को माता मानने की परंपरा और भी सुदृढ़ हो गई।

दूध के अलावा भी गाय से प्राप्त अन्य उत्पाद भी बहुत काम के होते हैं। यद्यपि इनके विषय में पारंपरिक ज्ञान बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध है और उसका प्रयोग जीवन में होता ही है किंतु दूसरी ओर नवीन शोध से चौंकाने वाले सूत्र मिल रहे हैं। इन पर आगे शोध जारी है किंतु प्राथमिक दृष्टि से इतना तो कहा ही जा सकता है कि इस विषय में आगे शोध बड़े सकारात्मक परिणाम लाएगी। एक रूसी वैज्ञानिक श्री शिरोविच के अनुसार गाय के गोबर से लिपे-पुते घर विकिरण से अपेक्षाकृत सुरक्षित होते हैं। गाय के घी से हवन करने से वातावरण स्वचछ और सुगंधित हो जाता है। कुछ नवीन शोध के अनुसार गोमूत्र व गोबर में क्षय रोग के कीटाणु मारने की अद्भुत क्षमता पाई गई है। इसी प्रकार गोधृत तथा चावल को मिलाकर यज्ञ करने से इथीलिन ऑक्साइड आदि बनती है। ये जीवाणुरोधक होती है तथा ऑपरेशन थियेटर में प्रयोग की जाती है। इसी प्रकार प्राप्त प्रोपलीन ऑक्साइड गैस को कृत्रिक वर्षा का आधार माना जाता है। जर्मन कृषि वैज्ञानिक डॉ. जुलिशस एवं डॉ. ब्रुक के अनुसार गाय अपने निश्वास के साथ ऑक्सीजन छोड़ती है। उसके शरीर से निकलने वाली गूगल भी गंध प्रदूषण भी दूर करती है। मुंबई के डॉ. कांति सेन सर्राफ के अनुसार यदि शहरी कचरे पर गाय के गोबर का घोल छिड़क दिया जाए तो उससे आने वाले दुर्गन्ध बंद हो जाती है। वह कचरा खाद में परिवर्तित हो जाता है। बत्तीस से अधिक औषधियाँ आज भी गोमूत्र से बनाती है।

गोवंश भारतीय कृषि ही नहीं समस्त जीवन का आधार रहा है। जीवन का वह प्रतिरूप जिसे आज हम स्वदेशी कहते है गोवंश पर ही आधारित रहा है। वस्तुतः गोवंश रक्षण और स्वदेशी कृषि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरे की गति नहीं। यदि इनका हजारों वर्षों से चला आ रहा सामञ्जस्य पुनः बैठा दिया जाए तो भारत के लिए परमवैभव का लक्ष्य संधान करना और अधिक संभव और आसान हो जाएगा। ■

Scanned with OKEN Scanner

सतत उपभोग : एक नया प्रतिमान

■ डॉ. मुरली मनोहर जोशी

(द्वितीय राष्ट्रीय तकनीकी दिवस ११ मई, २००० के अवसर पर डॉ. मुरली मनोहर जोशी, मानव संसाधन मंत्री भारत सरकार के वे अंश जिसमें भारतीय धर्म चिंतन की दृष्टि से अधुनातन विकास समस्या के निदान की चर्चा की गई है . . . सं.)

सतत उपभोग के लिए सरकार उद्योग जगत और जनता सभी को अपने विचारों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। कारपोरेट क्षेत्रों से लेकर राजधानी तक नए और अलग निर्णय लेने होंगे। ये निर्णय कारपोरेट क्षेत्र के लाभ से ऊपर उठकर संपूर्ण पृथ्वी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होंगे। भविष्य के मुख्य कार्यकारी अधिकारी अपने आपको मुख्य पर्यावरण अधिकारी के रूप में देखेंगे। हमें पर्यावरणविद् उद्यमियों की एक ऐसी पीढ़ी रचनी होगी जो एक ओर तो विश्वभर में पर्यावरण प्रेम के लिए जानी जाए और दूसरी ओर अपनी उद्यमशीलता के लिए पहचानी जाए। इस कार्य में भारत की भूमिका अग्रणी हो सकती है।

भारत सरकार ने इसके लिए अनेक नए कदम उठाए हैं। जिनमें राष्ट्रीय अन्वेषण संस्थान, जैव संसाधन बोर्ड का गठन एवं नई सहस्राब्दी की प्रतिनिधि भारतीय तकनीकी का शुभारंभ आदि कार्य सम्मिलित हैं। इन प्रयासों से जुड़े हुए सभी लोगों से मैं जोर देकर आग्रह करता हूँ कि वे सतत उपभोग की घोषणा को सामने लाएँ। ऐसी तकनीकी के विकास में सहयोग दें, जो सतत उत्पादन एवं उपभोग के पक्ष में हो।

यह बताने के बाद मैं इस संदर्भ में भारतीय दार्शनिक चिंतन की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। हम मूलतः परस्परावलम्बन पर विश्वास करते हैं अर्थात् हमारे लिए उपभोग दूसरे स्थान पर है। हमारे लिए दूसरों को देना अर्थात् 'दान' का पहला स्थान है, वहीं अपने लिए उपभोग अर्थात् भोग दान के बाद आता है। देने के बाद जितना बचता है उसे मर्यादित ढंग से ही उपभोग किया जाता है। इस प्रकार गृहस्थ, समाज और शासक सभी के लिए मर्यादाएँ स्थापित हैं। भागवत महापुराण में लिखा हुआ है कि प्रत्येक व्यक्ति को उतना ही धन रखने की छूट है जितना उसके जीने के लिए आवश्यक हो, शेष को या तो स्वयं बाँट दे या फिर उससे ले लिया जाएगा –

यावद् भ्रियते जठरं तावत् स्वत्वं देहिनाम्।
अधिकं योभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।।

उपभोग या भोग की तुलना में दूसरों को देना अर्थात् त्याग करना श्रेष्ठ है। वे लोग श्रद्धास्पद हैं जो संग्रह के बाद समाज और प्रकृति को पुनः लौटाते हैं। प्रकृति हमारे अस्तित्व का आधार है हमारी परंपरा में मनुष्य अपने भोज्य पदार्थों में पशु-पक्षियों को भी सहभागी मानता है, यहाँ तक कि सर्पों को भी महत्त्व प्राप्त है, क्योंकि वे सभी प्रकृति और पर्यावरण के संतुलन में योगदान देते हैं। इस प्रसंग में संभवतः इसका भी उल्लेख हो सकता है कि दैवी शक्तियाँ भी कभी कच्छप, कभी वाराह, तो कभी हयग्रीव (घोड़े) के रूप में अवतरित हुई हैं।

जिस व्यक्ति के पास दिखने वाला धन नहीं होता था, वह भी राजा की अपेक्षा अधिक पूजनीय होता था। मैं कहना चाहूँगा कि हम इसे अपने समय के वैज्ञानिक समाज में भी देख सकते हैं। डॉ. जगदीश चंद्र बोस, डॉ. पी.सी. राय, प्रो. सत्येन बोस, डॉ. सी.वी. रमण, डॉ. होमी भाभा इत्यादि सच्चे अर्थों में कर्मयोगी थे, जो सदैव असंग्रही और अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित थे।

मैं भगवद्गीता के दसवें अध्याय को स्मृत करना चाहता हूँ जिसमें श्रीकृष्ण कहते है – सभी स्थिर रहने वाले पदार्थों में मैं हिमालय हूँ स्थावराणां हिमालयः। सभी वृक्षों में अस्वत्थ (पीपल) हूँ – अस्वत्थः सर्व वृक्षाणां। और वह आगे कहते हैं सभी वन्य प्राणियों में मैं सिंह एवं सभी पक्षियों में विनीता पुत्र (गरुड़) हूँ – मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं, वैनतेयश्च पक्षिणाम्।। पुनः जल के जन्तुओं में मैं मगरमच्छ और नदियों में गंगा हूँ – झषाणां मकरश्चास्मि, स्रोतसामास्मि जाह्नवी।

भगवान के कथन से हिमालय की पवित्रता घोषित हुई और हम हिमालय की पूजा करते हैं तथा कैलाश और अमरनाथ की तीर्थयात्रा करते हैं। इसी प्रकार पीपल की पूजा भी पूरे देश में होती है। सिंह की प्रजातियाँ समाप्त हो रहीं हैं, परंतु हम उन्हें बचाने का प्रयास कर रहे हैं। गंगा सभी नदियों में धर्म-दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है लेकिन हमारी परंपरा में सभी नदियाँ पूजनीया हैं। सभी भारतीय प्रतिदिन यह संकल्प पढ़ते हैं –

गंगे च यमुनेश्चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधिंकुरु।।

आयुर्वेद कहता है – नमो वृक्षेभ्यः, दूसरे शब्दों में – 'नमो वन्याय च' अथवा 'अरण्यानां पतये नमो नमः' इत्यादि हम सभी वृक्षों–वनों और वनों के अधिपति देवताओं को प्रणाम करते हैं। मुझे वायु पुराण का एक सुंदर कथन स्मृत हो रहा है जिससे उपभोग के नियम उजागर होते हैं। इससे समझा जा सकता है कि हम उपभोग के सातत्य के टूट जाने पर क्या कर पाएँगे? चूँकि इच्छा की पूर्ति से यह कभी भी कम नहीं होती या कहें कि इसको पूरा करके संतुष्ट नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में भोग संतुष्टि प्रदान नहीं करता। क्योंकि इच्छाओं की पूर्ति के साथ ये और बढ़ती जाती हैं जैसे आग में घी एवं अन्य

Scanned with OKEN Scanner

ज्वलनशील पदार्थों के पड़ने से वह और बढ़ती जाती है।

न जातु कामः कामानां उपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।

उपभोग और अधिक उपभोग के प्रति आकर्षित करता है और यह एक घातक परिस्थितियाँ पैदा करने लगती है। उपभोग पर धर्म का अंकुश होना चाहिए। क्योंकि मनुष्य को प्रकृति से कुछ ही जरूरत है। जब ये जरूरतें बढ़ती हैं, माँग भी बढ़ती है और उपभोग भी, और तब जैसा कि धर्मग्रन्थ कहते हैं – मनुष्य जानवर बन जाता है। संसार के लोग इस सत्य को जानते हैं। लेकिन वे इसे भूलना चाहते हैं। हमें जीवन के उच्च आदर्शों की पुनर्स्थापना अनियंत्रित उपभोग पर पवित्र या धार्मिक रोक लगाने हेतु करनी होगी।

अत: मुझे यह लगता है कि हमारी परंपराओं में उपभोग जीवन के सामान्य नियमों से संचालित होते हैं। यह वह रास्ता है जिससे उपभोग को 'स्थाई' बनाया जा सकता है। अभी भी गाँवों में लोग नए पेड़ों को नहीं काटते। जातक कथा की प्रसिद्ध साल पेड़ की कहानी में बुद्ध स्वयं पेड़ बन जाते हैं ताकि राजा अपना महल बनाने के लिए पेड़ न काट सके। हम प्रकृति का आदर करते हैं और जो भी लेते हैं उसे वापस भी करते हैं। पश्चिम की उपभोग आधारित जीवन-पद्धति ने समुद्री जीवन, अंतरिक्ष, ग्लेशियर्स, नदियां और यहाँ तक कि ध्रुवीय बर्फ को भी खतरे में डाल दिया है।

मित्रो, जब मैं और दार्शनिक स्रोतों या निधि की ओर ध्यान देता हूँ तो मुझे महसूस होता है, हमें इसके अंदर जाकर इसे समझना होगा और अपनी उन परंपराओं का पालन करना होगा जो सीमित उपभोग की बात करते हैं और इसकी व्याख्या करते हैं –

'तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' अर्थात् हम अपने चारों तरफ जो भी देखते या महसूस करते हैं वह सब ईश्वर का है और हमें ईश्वरीय नियमों के अनुसार उनका उपभोग करना चाहिए, दूसरे शब्दों में इस सतत उपभोग के दृष्टिकोण को पश्चिम के लोगों को भी बताना होगा; ताकि

उनकी वर्तमान मानसिकता में परिवर्तन हो और एक वैश्विक सहमति का विकास हो, जिससे उपलब्ध संसाधन का उपयोग, उनका वितरण एवं उपलब्धता संपूर्ण मानवों के लिए निश्चित हो सके। यह बात हमें अधुनातन अर्थशास्त्रीय विचार प्रदान करता है जिससे स्थापित होता है कि सभी संसाधन ईश्वर प्रदत्त उपहार हैं और उनका नियमबद्ध उपभोग ही हो सकता है। हम राष्ट्र के रूप में और व्यक्ति के रूप में विश्वसनीय अधिकार तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब ईश्वर में आस्था रखें, और तभी हमारी पृथ्वी रहने का सर्वसुखद स्थान बन पाएगी, संपन्नता और निर्धनता के बीच गहराती खाई भी तभी पट सकती है। एक भारतीय के रूप में हमें अपने मूल्यों को पुनः सीखना-समझना होगा और विकसित विश्व के लिए भी हमें इसकी व्याख्या करनी होगी।

मैं पिछले माह ७७वें साउथ सम्मेलन के लिए हवाना में था, मुझे आपको यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि वहाँ एकत्रित विभिन्न सरकारों के प्रतिनिधियों के मन में क्षरणशील उपभोग की चिंता थी और साउथ सम्मेलन के घोषणा पत्र में इस विषय का उल्लेख किया गया था जिसे मैं यहाँ दोहराना चाहूँगा "हमें विश्वास है कि औद्योगिक देशों का वर्तमान उत्पादन एवं उपभोग क्षरणशील है और इसमें परिवर्तन लाना होगा। क्योंकि वे पृथ्वी के बने रहने के लिए खतरा बन गए हैं। हम इस बात में पूरी तरह विश्वास रखते हैं कि तकनीकी विकास का क्रमबद्ध मूल्यांकन उनके आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय प्रभावों के आधार पर होना चाहिए और इसमें सभी सामाजिक क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए जिसमें उद्योग-जगत, सरकार एवं वैज्ञानिक समुदाय जो पारंपरिक रूप से इसके अंग नहीं हैं वे भी शामिल हों। हम विकसित देशों का आह्वान करते हैं कि वे विकासशील देशों को प्राथमिकता के आधार पर वित्तीय सहायता एवं पर्यावरण मित्र तकनीक देने के अपने विचारों के प्रति निष्ठावान रहें।"

हमारा परामर्श और वकालत सतत उपभोग हेतु अंतरिक्ष, समुद्रों एवं जलस्रोतों जैसे हिमनदों एवं नदियों, वनों इत्यादि और इससे भी आगे बढ़कर मनुष्यों को ईश्वर द्वारा उपहार स्वरूप दिए गए शुद्ध हवा-पानी के संरक्षण एवं संपोषण के लिए है। यदि इसी प्रकार वर्तमान उपभोगवादी प्रवृत्ति बनी रही तो मनुष्य को इनकी भी कमी हो जाएगी। हम जानते हैं कि यह संघर्ष लम्बा है, उनकी मनोभूमि को परिवर्तित करने के लिए कठिन परिश्रम करना होगा। फिर भी इस संसार में ऐसे बहुत से लोग हैं जिनके विचार सतत उपभोग के विषय में एक समान हैं। हम सभी का यह दायित्व है कि इस संघर्ष को आगे ले चलें।

Scanned with OKEN Scanner

भारत की सामर्थ्य

चंद्रशेखर (पूर्व प्रधानमंत्री)

मुझे लगता है कि हमारे देश की शक्ति और सामर्थ्य फिर से तभी जिंदा होगी जब हजारों लोग एक साथ मिलकर अपने देश को, अपनी संस्कृति के कल्याणकारी पक्ष को परखें, ज्ञान-विज्ञान को परिस्थिति के अनुरूप निखारें, अपने सामर्थ्य की आस्था के आधार पर चलने की कोशिश करें।

आज देश का एक बड़ा तबका एक ऐसी व्यवस्था को अंगीकार करने के लिए बेताब दिखता है जिसका हमारी अपनी मान्यताओं और परम्परा से सरोकार नहीं। हमारी संस्कृति, हमारे मूल्य और मानक, हमारी अपनी सोच इन सबको भूलकर यह तबका उसी होड़ में शामिल होने के लिए लालायित है, यह चिन्ताजनक है।

हमारे चिंतन की मुख्यधारा में हमारी अतीत की उपलब्धियों को जैसे पूरी तरह भुला देना हमारे लिए सामान्य बात बन गई है। निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण के नाम पर दुनिया को जिस तरह एक विकृत संस्कृति का शिकार बनाने का प्रयास हो रहा है उससे स्वयं हमारी सामूहिक चेतना भ्रमित हो रही है। अपना सांस्कृतिक वैशिष्ट्य खोकर एक आकृतिविहीन भीड़ का अंग हो जाने का खतरा बन गया है। आज एक सवाल बार-बार उभर कर सामने आता है - क्या भारत कोई निराला देश है? मेरा जवाब सकारात्मक है। हाँ, हिन्दुस्तान सचमुच दुनिया का एक निराला देश है। यह सवाल १९०८ में गाँधीजी से पूछा गया था। तब उनका जो जवाब था वही आज मेरा है - मैं मानता हूँ कि जो सभ्यता हिन्दुस्तान ने दिखाई उस ऊँचाई तक दूसरा कोई नहीं पहुँच सका है। जो बीज हमारे पुरखों ने बोए हैं उनकी बराबरी कर सके, ऐसी कोई चीज हमारे देखने में नही आई। यही तबका सवाल उठा रहा है कि जब सारी दुनिया एक राह अपना रही है तो क्या हम उससे अलग रहकर अपने अस्तित्व को सँभाले रह सकते हैं?

आजादी के आंदोलन के दौरान भी यह सवाल उठा था। १९२८ में गाँधी जी को लिखे एक पत्र में नेहरू जी ने लिखा था-

"आपने कहीं कहा है कि भारत को पश्चिम से कुछ नहीं सीखना है। और भारत अपने पुराने दिनों में ही सभ्यता की एक सम्पूर्ण ऊँचाई पर पहुँच चुका था। मैं आपके इस विचार से असहमत हूँ। मेरा मानना है कि अपनी औद्योगिक पहुँच के बल पर कुछ किंतु और परंतु के साथ पश्चिम की औद्योगिक संस्कृति भारत को जीत लेगी। आपने औद्योगिकीकरण की कुछ बुराइयों को गिनाया है पर उसकी खूबियों पर ध्यान नहीं दिया है। इन बुराइयों को सब जानते हैं और उन्हें दूर करने की कोशिशें हो रही हैं। पश्चिम में विद्वान लोग मानते हैं कि ये बुराइयाँ औद्योगिक व्यवस्था की नहीं, पूँजीवाद की है।

आजादी के बाद देश में कुछ इसी प्रकार की सोच रही। इस विचारधारा का आश्रय लेकर आज कुछ लोग ऐसा सोच रहे हैं कि भारत के अपने मानकों को छोड़कर हमें इस उधार की मान्यता को स्वीकार कर लेना चाहिए। वे भूल जाते हैं कि जैसे व्यक्तियों के व्यक्तित्व अलग होते हैं वैसे ही हर राष्ट्र का एक अपना व्यक्तित्व होता है। और वह सचमुच विशिष्ट होता है। जो राष्ट्र अपनी अतीत की उपलब्धियों, उसकी कल्याणकारी प्रवृत्तियों और मान्यताओं को भुला देता है वह न तो अपनी वर्तमान समस्याओं को समझ सकता है और न एक उज्ज्वल भविष्य की रचना में समर्थ हो सकता है। आज इसी प्रकार के चिन्तन के शिकार होकर हम अपने लिए एक गंभीर समस्या पैदा करने पर उतारू जान पड़ते हैं।

इसी नासमझी के कारण पहले से बने संकट निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। हमारी समृद्धि और सामर्थ्य के आधार किसान और मजदूर निराश और हतप्रभ हैं। कल-कारखाने बंद हो रहे हैं। पूरी अर्थव्यवस्था संकट में है। युवा वर्ग में उत्साह नहीं, भविष्य में कोई आस्था नहीं, वे निराशा के शिकार हैं। शिक्षा-व्यवस्था को भी बाजारू बनाया जा रहा है।

आलम यह है कि सत्तारूढ़ वर्ग बरसों से अर्जित देश की संपत्ति को बेचने पर आमादा है। हमारे रोजगार और व्यवसाय, उनकी नीतियाँ जैसे कहीं और से संचालित हो रही हैं। बैंक चलाने से लेकर बिजली के लट्टू बनाने तक का काम दूसरों के हाथ में सौंप दिया जा रहा है। निर्यात घटता जा रहा है और आयात की स्थिति यह है कि जूते-मोजे से लेकर सिर की टोपी तक बाहर से आ रही हैं अब तो हालत यह है कि यहाँ की उत्पादन व्यवस्था को नष्ट कर देने के लिए उद्योगों से लेकर खेती तक के उत्पादों को दूसरों के भरोसे छोड़ने का प्रयास हो रहा है। रोजगार और व्यवसाय के मौके कम से कम होते जा रहे हैं। समाज सांस्कृतिक हमले की भी चपेट में है।

देश की एक-एक संस्थाओं को जैसे एक योजना के तहत ध्वस्त किया जा रहा है। किसान की जोत घटती जा रही है और कृषि-नीति में बड़ी-बड़ी विदेशी कंपनियों को बड़े से बड़े क्षेत्र बना लने की छूट देने

Scanned with OKEN Scanner

की बात चल रही है। विश्व व्यापार संगठन के कानून तेजी से थोपने के काम को ही सरकार अपनी कुशलता और सफलता मानने लगी है।

किसान अपने घर में रखा बीज भी अगले साल अपने खेत में बोना चाहे तो उसकी चाह को मिटाने के लिए नये बीज, जिनका उत्पादन अन्य के हाथों में होगा, बाजार से लेने होंगे, ऐसी असहायता का भाव पैदा करने का प्रयास हो रहा है। सत्ता का केन्द्र जैसे कहीं बाहर से संचालित हो रहा हो।

देश में नये-नये संकट उभर रहे हैं। मसलन एक ओर आतंकवाद तो दूसरे छोर पर विखंडित होते समाज का नजारा है। कभी जाति के नाम पर फसाद तो कभी संप्रदाय के नाम पर झगड़े खड़े किये जा रहे हैं। हमारी राजनीतिक व्यवस्था भी जैसे पंगु हो गयी हो। हम ऐसे ही विभाजन और विखंडन की राजनीति के शिकार बनते जा रहे हैं। सत्ता केन्द्रित विचार हमारी मानसिकता पर छा गया है।

''भारत की मानसिकता, उसकी प्राथमिकताएँ, उसकी प्राकृतिक उपलब्धियाँ हमारे आज के देश चलाने वाले लोगों की सोच से बाहर हैं। वे भूल गये हैं कि दो हजार बरस से यूरोप व उसके बाद अरब लोग मुख्यत: जिस अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर जीवन चलाते थे, उसका आधार था शोषण और अन्य देशों की सम्पत्ति की लूट। बाकी विश्व का भी वही तरीका बनाने की भूल को एक नयी नीति का रूप देने की कोशिश हो रही है।

हमने तो सदियों से एक दूसरी राह अपनायी। हमने अपने प्राकृतिक साधनों और श्रमशक्ति को आधार माना। अपनी आवश्यकता के साधनों को प्रचुर मात्रा में पैदा किया। उनका व्यवस्थित उपयोग किया। मौलिक आवश्यकताएँ - खाना, कपड़ा, रहने की जगह, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति - अपने यहाँ के सब लोगों को उपलब्ध कराया। यह हम भूल गये-से जान पड़ते हैं। इस तरह की भूलें तो हमारे यहाँ पिछले कुछ दिनों में तेजी से हुई हैं और अब तो हम सब पढ़े-लिखे, अच्छे खाते-पीते, किसी भी दल व संप्रदाय व वाद के हों, इन भूलों को सत्य जैसे मानने लगे हैं। हम अपने और पराये (व्यक्ति, व्यवस्था, तकनीक, विज्ञान) के भेद को भुला बैठे हैं।''

सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र बिन्दु है मनुष्य। किसी देश और समाज की शक्ति और सामर्थ्य इस बात में होती है कि अपने चिंतन को परिस्थितियों के अनुरूप वह किस तरह एक अनवरत और शाश्वत प्रवाह का रूप देता है। यह बहाव एक भरी-पूरी नदी का बहाव है। जो अपने किनारों को थामे रहती है और जिसका पानी हर क्षण नया भी होता रहता है। इस सरिता की कछारें होती हैं - उसका दर्शन, उसका ज्ञान-विज्ञान, उसकी परंपराएँ, उसकी रीति-रिवाज, उसकी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक समृद्धि, उसके लोगों का अपना त्याग और तपस्या की गाथा। इसके अलावा समाज की सृजनात्मकता से जो प्रवाह बनता है वह पूरे देश और समाज को धारण करता है और उसको सम्पूर्णता देता है।

भारत सिर्फ मिट्टी का नाम नहीं, कुछ नदियों और पहाड़ों का समुच्चय नहीं। भारत सत्य की एक सतत्, शाश्वत गवेषणा का नाम है। सत्य की इस धारा से यह दुनिया बार-बार आलोकित होती रही है। यह ऋषियों, संतों, महात्माओं, सूफियों और गुरुओं की साधना का देश है उन्हें आस्था और शक्ति देनेवाली महान जनशक्ति का देश है। ह्वेनसांग, फाहियान, इब्नबतूता, मैक्समूलर यों ही भारत देखने नहीं चले आए।

आइंस्टाइन ने कहा कि मानवता के विकास में भारत के योगदान को भूला नहीं जा सकता। उसने दुनिया को गिनना न सिखाया होता तो आज ये खोज और आविष्कार न हुए होते। मनुष्यता की इस अनमोल धरोहर ने दुनिया के सोचने-समझने वाले किन लोगों को अपनी ओर नहीं खींचा है। मार्कट्वेन ने जब भारत को जाना तो उनके मुँह से केवल यही शब्द निकले - ''मानवता भारतरूपी पालने में फली-फूली है। मनुष्य को वाणी यहीं से मिली है और मनुष्य का इतिहास भी यहीं से निकला है। गाथाओं का तो भारत दादी रहा है और परंपराओं के मामले में दादी की भी माँ। मनुष्यता की सारी रचनात्मक धरोहरें भारत में ही हैं।''

भारत केवल गंगा और यमुना, कावेरी, सतलुज, नर्मदा, सिंधु और ब्रह्मपुत्र की घाटी तक ही सीमित नहीं रहा है, भारत एक बहुत बड़े सांस्कृतिक विस्तार का नाम है। अमरीका में चीन के पूर्व राजदूत ह्ये शिह इस सांस्कृतिक विस्तार की अभ्यर्थना करते हुए कहते हैं- ''भारत ने चीन में एक भी सैनिक नहीं भेजा। खून का एक भी कतरा नहीं बहाया। किसी की आँखों में आँसू की एक भी बूँद नहीं डाली। फिर भी चीन दो हजार साल तक उसके प्रभाव में रहा।''

यह एक स्थापित तथ्य है और आप सब जानते हैं। अपने दस हजार साल के ज्ञात इतिहास में भारत ने किसी दूसरे देश पर कभी कोई हमला नहीं किया। उसने किसी दूसरे मनुष्य को दबाने के लिए कभी हाथ और पाँव नहीं फटकारे। कोई हजम करने आया तो उसने उसे वहीं अपने में समेट लिया। शक, हूण, किरात, यवन- सब उसके अपने होकर रह गए। ऐसी निस्पृह संस्कृति का नाम है 'भारत'। ईसा के जन्म से सात सौ साल पहले ही ज्ञान के संस्थागत केन्द्र के रूप में भारत में तक्षशिला विश्वविद्यालय की स्थापना हो चुकी थी। यूरोप में पहला विश्वविद्यालय इसके दो हजार साल बाद बना। ईसा के जन्म से लगभग पाँच सौ साल पहले आचार्य चरक और सुश्रुत ने वे आपरेशन भी किए थे, जिन्हें आज प्लास्टिक और ब्रेन सर्जरी कहते हैं। उन्हें आनुवांशिकी और रोगों की रोकथाम के तरीकों की विधिवत जानकारी थी। नौनाहन का शास्त्र सिंध में छह हजार साल पहले ही विकसित हो गया था।

जिस नेवीगेशन शब्द का आज हम अक्सर इस्तेमाल करते हैं, उसका जन्म संस्कृत के नवगतिह शब्द से हुआ है। संस्कृत समस्त यूरोपीय भाषाओं की जननी है। आज तो विज्ञान के नवीनतम साधन कम्प्यूटर के शास्त्री लोग भी मानते हैं कि कम्प्यूटर के उपयोग के लिए सबसे वैज्ञानिक भाषा संस्कृत है। पृथ्वी सूरज के गिर्द एक चक्कर लगाने में ठीक-ठीक कितना समय लेती है। भास्कराचार्य ने इसकी सही-सही गणना काफी पहले ही कर दी थी, जबकि

भारत की मानसिकता, उसकी प्राथमिकताएँ, उसकी प्राकृतिक उपलब्धियाँ हमारे आज के देश चलाने वाले लोगों की सोच से बाहर हैं। वे भूल गये हैं कि दो हजार बरस से यूरोप व उसके बाद अरब लोग मुख्यत: जिस अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर जीवन चलाते थे, उसका आधार था शोषण और अन्य देशों की सम्पत्ति की लूट। बाकी विश्व का भी वही तरीका बनाने की भूल को एक नयी नीति का रूप देने की कोशिश हो रही है।

पश्चिम इसी बात को मानकर चल रहा था कि सूरज पृथ्वी के गिर्द घूमता है और कोई इसके उल्टा कहता तो उसकी सजा फाँसी थी।

दुनिया को गिनाना भारत ने सिखाया और आर्यभट्ट ने शून्य की अवधारणा दी। मिस्र और रोमन संस्कृति में सबसे बड़ी गिनती १०० की हो सकी थी। जबकि भारत में ईसा के जन्म के पाँच हजार साल पहले वैदिक काल में ही $१०^{५३}$ (महासंख्य से अधिक) तक की गिनती गिनी जा चुकी थी। हर संख्या को उसका अलग-अलग विशिष्ट नाम दिया जा चुका था। यूरोप में जब गणितज्ञों का जन्म भी नहीं हुआ था तब उनके जन्म के छ: सौ साल पहले ही बोधायन ने पाई का मूल्य ज्ञात कर लिया था। उस प्रमेय को सामने रख दिया था जिसे आज हम पाइथागोरस प्रमेय कहकर रटते और घोंटते हैं। बीजगणित, त्रिकोणमिति, ज्यामिति, कलनशास्त्र - भारत ने आविष्कृत किये। दशमलव प्रणाली और अंकों का स्थान महत्त्व भारत के गणित से निकला और जब दुनिया के अधिकाँश लोग खानाबदोशों की जिन्दगी जी रहे थे, तब पाँच हजार साल पहले ही भारत में सिंधु घाटी में एक सम्पूर्ण संगठित सभ्यता विकसित हो गयी थी। सरस्वती संस्कृति की खोज में विभिन्न राज्यों में जो उत्खनन हो रहे हैं वे एक बहुत ही परिपूर्ण सभ्यता के होने के सबूत दे रहे हैं। जब दुनिया स्वर से परिचित तक नहीं थी, इस देश में सामवेद के गीत गाये जाते थे।

जब लोगों ने बाँध और झील के उपयोग के बारे में भी नहीं सोचा था तब भारत में चन्द्रगुप्त मौर्य के जमाने में ही शक राजा रूद्र दमन ने राई वाटक की पहाड़ियों पर सुदर्शन जैसी बड़ी झील बनवाकर आस-पास के इलाकों के लिए कभी न सूखने वाले पानी के सोते का इन्तजाम कर दिया था। जनतन्त्र के जिस राजतंत्र को आज हम मानवता की सबसे बड़ी धरोहर मानते हैं, उसका उदय भारत में ईसा के जन्म से पहले ही हो चुका था। फ्रांस के अनन्य विद्वान रोम्यांरोला को यूरोप से कम प्यार नहीं था, पर जब उन्होंने भारत को देखा, जाना और समझा तो उनके मुँह से निकला 'मनुष्य ने जिस दिन से सपने देखने शुरू किये, वे सपने कहीं जनमें, फले और फूले तो दुनिया में वह केवल एक जगह है - भारत! भारत!!''

मैंने भारत के गौरव की ये बातें विरुदावली गाने के लिए नहीं कहा, और न ही अपना सीना फुलाने के लिए कहीं हैं कि हम ऐसी महान उपलब्धियों वाले देश के वासी हैं। यह बातें मैने उस स्रोत की तलाश के लिए प्रेरित करने के लिए कही हैं जिसे भारत कहा जाता है। और जहाँ से भारत की शक्ति और सामर्थ्य निकलती है। यह अकस्मात् नहीं हो सकता था कि कहीं भास्कराचार्य पैदा हो गए और कहीं से बोधायन निकल आए। यह अकस्मात् नहीं था कि कभी किसी बुद्ध का जन्म हो गया और कभी कहीं कोई कबीर पैदा हो गए। ये उपलब्धियाँ जीवंत सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था की देन थीं।

Scanned with OKEN Scanner

भारत में तैंतीस करोड़ देवताओं और छप्पन करोड़ देवियों की पूजा अंधविश्वास नहीं है, मानवशक्ति में अटूट आस्था का प्रतीक है। और यह भी कोई अनायास नहीं हुआ कि अरब, यूनान, रोम जैसे सभ्यताओं के मुँह यदि भारत की ओर थे तो यूरोप से जो जहाजी बेड़े निकले, उनकी पालों और पतवारों का रुख भी भारत की ओर था। यह जो पूरी नयी दुनिया खोजी गयी है वह सोने की चिड़िया कहे जाने वाले भारत की खोज में ही किए जाने वाले प्रयास का परिणाम था।

सच तो यह है कि सत्रहवीं सदी में अंग्रेजों के आने के पहले तक भारत दुनिया का सबसे समृद्ध देश था। उसके ज्ञान-विज्ञान की, कल-कारखानों की, रीति-रिवाज की एक-एक संस्था को गुलामी के दिनों में ध्वस्त किया गया। अगर किसी एक का इस सिलसिले में नाम लेना जरूरी है तो मैं ईस्ट इंडिया कम्पनी को चिह्नित करता हूँ। उस दौर में भारत की लूट के दो हिस्से हैं। पहले कंपनी ने हमारी संपदा बटोरी, व्यापार का काम चलाया।

सच तो यह है कि सत्रहवीं सदी में अंग्रेजों के आने के पहले तक भारत दुनिया का सबसे समृद्ध देश था। उसके ज्ञान-विज्ञान की, कल-कारखानों की, रीति-रिवाज की एक-एक संस्था को गुलामी के दिनों में ध्वस्त किया गया। अगर किसी एक का इस सिलसिले में नाम लेना जरूरी है तो मैं ईस्ट इंडिया कम्पनी को चिह्नित करता हूँ। उस दौर में भारत की लूट के दो हिस्से हैं। पहले कंपनी ने हमारी संपदा बटोरी, व्यापार का काम चलाया। औद्योगिक क्रांति के बाद पूँजीवाद की प्रारंभिक अवस्था में कच्चा माल ढोया जाने लगा और उनके यहाँ का पक्का माल यहाँ बिके इसलिए हमारे देश को कृषि प्रधान बनाकर साजिश की गई। विद्वानों ने जो जाना और पाया है। उसके मुताबिक सत्रहवीं सदी तक हमारे देश में चिकित्सा, शिक्षा, धातु-विज्ञान, गणित आदि की विधिवत विकसित प्रणालियाँ थीं अन्न के क्षेत्र थे। अन्न के भंडार थे। इस्पात तक बनाने का अपने यहाँ कौशल था। अनेक संस्थाओं ने अपनी खोजों से इस बात को साबित किया है। इस तरह के तथ्य अंग्रेज प्रशासकों के रिकार्ड में भी दर्ज हैं।

गाँधी और अंग्रेज प्रोफेसर फिलिप हरटोग के बीच तो इस बारे में नौ साल लम्बी बहस चली थी। और उन्हें लिखे एक पत्र में १९३१ में गाँधी जी ने बहुत साफ कहा था- ''मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं कि *भारत में आज जितनी अशिक्षा है, सौ साल पहले उतनी अशिक्षा नहीं थी। जो चीजें जहाँ थीं, वहाँ से उन्हें सहेजने और संभालने के बदले अंग्रेज प्रशासकों ने पहले उनकी जड़ें खोदकर देखना शुरु किया। उन्होंने मिट्टी हटा ली। जड़ो को नंगा छोड़ दिया और भारत नाम का एक अति सुन्दर वृक्ष सूख गया। इतिहासकार धर्मपाल ने 'द ब्यूटीफुल ट्री' में डब्ल्यू लिलिएंडन का एक उद्धरण दिया है - ''१८३० के आसपास बंगाल और बिहार में एक लाख के आसपास स्कूल थे। और बम्बई प्रेसीडेंसी में १८२० तक कोई भी ऐसा गाँव नहीं था जहाँ एक स्कूल न हो। बड़े गाँवों में तो एक से अधिक स्कूल थे'' जी.एल. प्रेंडरजेस्ट ने भी कहा है कि पंजाब में भी १८५० तक शिक्षा के प्रसार की यही हालत थी। इन धर्मपाल जी ने यहाँ आये अंग्रेज प्रशासकों के लिखे-पढ़े का जो अध्ययन किया है, उसके मुताबिक १७वीं सदी तक देश के तकरीबन हर गाँव में एक स्कूल था, अपने हाट-बाजार थे, अपनी न्याय और प्रशासन की व्यवस्था थी, कला-कौशल और उद्योगों को संभालने और बढ़ाने के अपने इंतजाम थें। १७वीं सदी तक सारी आपदाओं के बावजूद हमारी उत्पादन व्यवस्था मजबूत थी। वह स्वावलम्बी थी।* जरूरत इस बात की थी कि उसी कड़ी से राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो। वहाँ से जुड़े। वहीं से आधुनिकीकरण का अगला कदम उठे। यह नहीं हुआ। यह जानना जरूरी है कि क्यों?

गाँधी को जाननेवाले मानते हैं कि इस अति सुन्दर वृक्ष की जड़ों को सुखाकर उनकी जगह पर बिना जड़ की एक विदेशी प्रणाली को बैठा देना ही हमारी मौजूदा दुर्दशा का कारण रहा है। एक तो इससे शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल की प्रणाली बिगड़ी। यही वजह है कि साक्षरता और सबको शिक्षा देने के हमारे आज के प्रयास भी सफल नहीं हो पा रहे हैं। दूसरे, इससे सामाजिक संतुलन चौपट हुआ। यह सामाजिक संतुलन था तो समाज का हर वर्ग अपनी जरूरत भर की शिक्षा का इंतजाम कर लेता था और उसका हर आदमी स्थानीय स्तर पर समाज के समाजिक-सांस्कृतिक जीवन में साधिकार और ससम्मान भागीदारी ले सकता था। इससे बड़े समाज में भी उसकी भागीदारी के रास्ते खुले थे। शिक्षा-व्यवस्था और आर्थिक संरचना के टूट जाने से किसानों, जमीनी स्तर पर काम करनेवाले कारीगरों, दस्तकारों, उद्योग-धंधा करनेवाले लोगों की सामाजिक और आर्थिक हैसियत में कमी आ गई। आज जिन्हें हम दलित और पिछड़े कहते हैं और जिनकी सामाजिक और आर्थिक गिरावट जगजाहिर है और उनकी दुर्दशा का असल कारण यह है।

सोचना, सीखना, समझना, चीजों को अपने कौशल से अपने हिसाब का बना लेना और उनमें प्राण फूँक देना हमारे समाज की विशिष्टता रही है। लेकिन इस विशिष्टता का मनमाने ढंग से इस्तेमाल भी किया गया है।

सभ्यता क्या है, इसे लेकर गाँधी जी ने कहा है कि -

''सभ्यता वह आचरण है जिससे आदमी अपना फर्ज अदा करता है। फर्ज अदा करने के माने हैं नीति का पालन करना। नीति के पालन का मतलब है अपने

Scanned with OKEN Scanner

मन और इन्द्रियों को वश में रखना। ऐसा करते हुए हम अपने को (अपनी असलियत को) पहचानते हैं। यही सभ्यता है। इससे जो उल्टा है वह बिगाड़ करनेवाला है।

उन्होंने सोचा कि बड़े शहर खड़े करना बेकार की झंझट है। उनमें लोग सुखी नहीं होंगे। उनमें धूर्तों की टोलियाँ और वेश्याओं की गलियाँ पैदा होंगी: गरीब अमीरों से लूटे जाएँगे। इसलिए उन्होंने छोटे देहातों से संतोष माना।

''उन्होंने देखा कि राजाओं और उनकी तलवार के बनिस्बत नीति का बल ज्यादा बलवान है। इसलिए उन्होंने राजाओं को नीतिवान पुरुषों-ऋषियों और फकीरों - से कम दर्जे का माना।

''ऐसी जिस राष्ट्र की गठन है वह राष्ट्र दूसरों को सिखाने लायक है; वह दूसरों से सीखने लायक नहीं है।

पश्चिम में शक्ति का स्रोत आर्थिक और राजनीतिक सत्ता रही है। इसी में उसका परमानन्द है। उनका दृष्टिकोण मनुष्य और प्रकृति के बीच टकराव का है और वहाँ औद्योगिकीकरण, उनकी संस्कृति, उनका रहन-सहन, उनकी सोच इसी से निकली है। वहाँ भौतिकवाद प्रबल रहा है।

भारत में मनुष्य और प्रकृति के बीच सहयोग और समन्वय का रिश्ता है। हमारी संस्कृति और सभ्यता के सूत्र यहाँ से निकले हैं। और उसका निचोड़ बहुत रोचक रहा है। ये निचोड़ थे - समाज के रूप में एक ऐसा वहुरंगी चमन, जिसमें हर बयार और हर बहार में फूल खिले हों। सत्ता और अर्थसंरचना की ऐसी विकेन्द्रित इकाइयाँ, जहाँ गाँव अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भर इकाइयाँ हो और वहाँ उनका स्वशासन हो। व्यवस्था और न्याय की रचना और अनुपालन के लिए सामूहिक या सामुदायिक पंचायतें। ऐसे समाज को न राजा की बहुत जरूरत थी और न प्रजा की। यह एक ऐसी व्यवस्था थी जहाँ हर हाथ के लिए काम था और हर मुँह के लिए निवाला। कच्चा माल इधर-उधर से आता तो उसे अपने यहाँ ही ठोंक-पीटकर लोहा बना लिया जाता। जन-जन तक फैले इस भारत प्रभु के अनन्त हाथ थे और अनंत मेधा थी।

इसी स्वपूरित भारत से उठकर कोई कृष्ण कह सकता था कि देखो, सारा ब्रह्माण्ड मेरे अंदर लीन है। हमारा परमानंद यह था। इस परमानंद में राज्य, समाज, धर्म और अर्थ – इन चारों ही व्यवस्थाओं को सहज स्वाभाविक रूप से विकेंद्रित होना था। हमारा मंत्र रहा-विकेंद्रीकृत व्यवस्था से शक्ति संचय। हम उसी व्यवस्था से सत्रहवीं सदी तक दुनिया के सबसे समृद्ध देश थे। महान रोमन साम्राज्य को भी कानून बनाना पड़ा था कि भारत के कपड़े की खरीद न की जाए। यह स्वपूरित भारत ही कह सकता था कि मेरे पास जो कुछ है वह समस्त मानवता का है – त्वदीयं वस्तु गोविन्दम् तुभ्यमेव समर्पये। वैश्वीकरण तो यह है – भोग का नहीं, त्याग का वैश्वीकरण। उपभोग का नहीं, कृतज्ञता का वैश्वीकरण। सत्ता का नहीं, सदाशयता का वैश्वीकरण। मनुष्यता का वैश्वीकरण। जहाँ-जहाँ तक सूरज की रोशनी जाती है और जहाँ-जहाँ तक नहीं भी जाती है वहाँ मेरी अपनी मौजूदगी का वैश्वीकरण।

आज के वैश्वीकरण के सूत्र भारत के समाज को विखंडन के रास्ते पर ले जा रहे हैं। इसलिए यह कोई संयोग नहीं है कि जाति और संप्रदाय के नाम पर हमारे समाज को बाँटने वाली ताकतों ने वैश्वीकरण को अपने गले में हार की तरह पहन लिया है। वे पश्चिम के अंधानुकरण की लगातार ढोल पीट रहे हैं।

हमारी शक्ति के सूत्र हैं हमारे किसान और मजदूर। हमारे गाँव-गाँव और हाथ-हाथ तक फैल सकने वाले लघु और कुटीर उद्योग। स्थानीय सामग्री, कौशल और प्रतिभा को उत्पादन में बदलने वाले छोटे कल और कारखाने। जमीनी स्तर को अपनी दरकारों को लेकर गठित पंचायतें। उनकी राजनीतिक और वैधानिक व्यवस्थाएँ, हमारी परिवार व्यवस्था, हमारी विभिन्न भाषाएँ और बोलियाँ, हमारे अपने हाट-बाजार, हमारे ताल-तलैया, हमारी नदियाँ, हमारे पहाड़ और हमारा मनुष्य और मनुष्यता को पोषित करने वाला संपूर्ण जीवन-दर्शन। भारत का जो नक्शा बनेगा, वह इसी के इर्द-गिर्द बनेगा। वह जो बनेगा, उसे गाँधी ने हिंद स्वराज में इस रूप में देखा है –

''इस राष्ट्र में अदालतें थी, वकील थे, डॉक्टर, वैद्य थे। लेकिन वे सब ठीक ढंग से नियम के मुताविक चलते थे। सब जानते थे कि ये धंधे बड़े नहीं हैं। वकील, डॉक्टर वगैरह लोगों में लूट नहीं चलाते थे, वे तो लोगों के आश्रित थे। वे लोगों के मालिक बनकर नहीं रहते थे। इंसाफ काफी अच्छा होता था। अदालतों में न जाना, यह लोगों का ध्येय था। उन्हें भरमाने वाले स्वार्थी लोग नहीं थे। इतनी सड़न भी सिर्फ राजा और राजधानी के आसपास ही थी। यों (आम) प्रजा तो उससे स्वतंत्र रहकर अपने खेत का मालिकी हक भोगती थी। उसके पास सच्चा स्वराज्य था।

और जहाँ यह चांडाल सभ्यता नहीं पहुँची है, वहाँ हिंदुस्तान आज भी वैसा ही है। उसके सामने आप अपने नए ढोंगों की बात करेंगे, तो वह आपकी हँसी उड़ाएगा। उस पर न तो अंग्रेज राज करते हैं, न आप कर सकेंगे।

''जिन लोगों के नाम पर हम बात करते हैं, उन्हें हम पहचानते नहीं हैं, न वे हमें पहचानते हैं। आपको और दूसरों को, जिनमें देशप्रेम है, मेरी सलाह है कि आप देश में – जहाँ रेल की बाढ़ नहीं फैली है उस भाग में – छः माह के लिए घूम आएँ और बाद में देश की लगन लगाएँ, बाद में स्वराज्य की बात करें।''

राजेंद्र बाबू गाँधी के उस चंपारन सत्याग्रह आंदोलन से निकले थे, जो गाँधी का इस भारत के नजदीक जाने का प्रयोग था। जमीन से शक्ति संचित करने का प्रयोग था। क्या आज का वक्त गाँधी और राजेंद्र प्रसाद जैसे लोगों को फिर खींचकर एक साथ खड़ा कर देने का नहीं है? भारत को यही प्रयोग बचाएगा।

मुझे लगता है कि हमारे देश की शक्ति और सामर्थ्य फिर से तभी जिंदा होगी जब हजारों लोग एक साथ मिलकर अपने देश को, अपनी संस्कृति के कल्याणकारी पक्ष को परखें, ज्ञान-विज्ञान को परिस्थिति के अनुरूप निखारें, अपनी सामर्थ्य की आस्था के आधार पर चलने की कोशिश करें। ■

(प्रथम राष्ट्रपति भारत रत्न डॉ. राजेंद्र प्रसाद की ११६वीं जयंती के अवसर पर आयोजित 'डॉ. राजेंद्र प्रसाद स्मृति व्याख्यानमाला' के अंतर्गत पूर्व प्रधानमंत्री श्री चंद्रशेखर के व्याख्यान का संपादित अंश . . .सं.)

Scanned with OKEN Scanner

विश्व-जीवन की गोद है वात्सल्य

डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

मित्र, शाश्वत माँ का अनुभव केवल कवि ही कर सकता है, अथवा सामान्य जन भी यह अनुभव जीवन के संघर्ष में पाते हैं? उनका उत्तर था, कहाँ नहीं है वह, कब नहीं है वह, सब तो उसी के हैं। क्या पुरुष में माँ नहीं होती? पशु-पक्षी-पेड़ किसमें वह नहीं है?

११ दिसम्बर, २००० को वृंदावन में वात्सल्य ग्राम के शिलान्यास के अवसर पर साध्वी ऋतंभरा का प्रवचन हो रहा था। वहाँ आयी भक्तों और स्रोताओं की बहुत बड़ी भीड़ में मैं अपने दो मित्रों के साथ एक पेड़ की बिखरी हुई छाँह में बैठा ऋतंभरा जी ने बड़े भावावेग में जैसे ही कहा कभी-कभी मुझे लगता है, मैं गुरुजी (स्वामी परमानंद जी महाराज) की भी माँ हूँ, नारायण की भी माँ हूँ। मेरे एक मित्र की आँखों में आँसू आ गए, पहले तो उन्होंने आँखें बंद कर आँसुओं को छिपाने का प्रयास किया बाद में असमर्थतावश चादर से मुँह ढक लिया। उनकी मनोदशा का अनुमान किए बिना दूसरे मित्र ने उनसे पूछा, क्या हो गया आपको? मैं भी क्षणिक चिंता से ग्रस्त हुआ। उन्होंने बताया, धूप लग गई, आँखें कमजोर हो गई हैं। मेरे दूसरे मित्र उत्तर से संतुष्ट हुए लेकिन मैं संतुष्ट नहीं हुआ, क्योंकि मैं उन्हें वर्षों से जानता हूँ, उनकी गंभीर प्रकृति और उनकी कविता को भी। मैंने सोचा, उनसे एकांत में बात करूँगा, निश्चय ही कोई गहरी बात सुनने को मिलेगी।

वृंदावन से लौटते समय कई प्रियजन साथ थे, लेकिन मैं और मेरे मित्र इतना एकांत तो थे ही कि उनसे जिज्ञासा की जा सकती थी।

मेरे छेड़ने पर उन्होंने कहा, सुप्रसिद्ध कवि भवानी प्रसाद मिश्र की एक कविता की पंक्ति है –

"यों बुढ़ापे में भटकना एक बचपन है / . . . . इस बचपन में शाश्वत एक माँ/सम्हालती है मुझे।"

शाश्वत माँ कौन है? जिसे बुढ़ापे की पकी हुई उम्र तक भटकते फिरने की नियति नहीं मिली हो शायद उसे शाश्वत माँ को पहचानने और पाने की आवश्यकता नहीं होगी, उसे सघन संसार की उपलब्धियों में इसके लिए अवकाश भी नहीं मिल सकता, वह बचपन कब तक भूल चुका होगा। पर जिसके जन्म को सघन संसार का अंधकार नहीं घेर सकता, जहाँ धूप छाहीं हो वहीं तो शब्द मातृकाओं की झंकृतियाँ होती रहती हैं। इसी झंकृति में भटकते-फिरने की नियति होती है। इसी भटकावे में बचपन होता है। और यदि बचपन शेष है तो माँ छोड़कर नहीं जाती, कैसे छोड़ेगी, किसके भरोसे छोड़ेगी वह अपने बच्चे को, देह के बुढ़ापे तक या देहान्त के बाद भी शाश्वत माँ की वात्सल्य धारा नहीं चुकती। उसी ने सृजन के अविराम प्रवाह को बना रखा है। इस सत्य को विरल संसार में रहने वाला सबोध प्राणी अवश्य जान लेता है। सच्चे कवि के निर्मल मन में शाश्वत माँ का अनुभव बार-बार होता रहता है –

यह जो मेरे भीतर / पीड़ा की खाई है – इसे मत पाटो,

यह जो मेरे भीतर / अपने आप रुलाई है इसे मत बाँटो,

पाटोगे – पट जाएगी नक्षत्रों की दूरियाँ,

बाँटोगे – बँट जाएगी धरती धूल कण में।

इस खाई में बँधा आसमान / निर्मल दुलार है,

इस रुलाई में बैठी हुई धरती / आँचल का प्यार है,

माँ है यहाँ – 'अपने को सृजन में देती हुई।'

अपने कवि मित्र की बातों में मैं किसी न किसी विचार का पड़ाव खोज रहा था। मैं या मेरे जैसे लोग विचार के धरातल पर ही ठीक-ठीक काव्य सत्यों को पकड़ पाते हैं। भाव जगत जब तक मूर्तमान नहीं होता, घटनाओं को आधार नहीं ले लेता, वह सबकी समझ में नहीं आ पाता। मैंने पूछा – मित्र, शाश्वत माँ का अनुभव केवल कवि ही कर सकता है, अथवा सामान्य जन भी यह अनुभव जीवन के संघर्ष में पाते हैं? उनका उत्तर था, कहाँ नहीं है वह, कब नहीं है वह, सब तो उसी के हैं। क्या पुरुष में माँ नहीं होती? पशु-पक्षी-पेड़ किसमें वह नहीं है? यह सच है कि उसकी अधिकतम अभिव्यक्ति स्त्री में होती है। फिर भी उसके अवतरण के बिना कोई भगवान बुद्ध नहीं हो सकता, स्वामी रामकृष्ण परमहंस नहीं हो सकता। करुणा का प्रवाह होता ही तब है जब अभ्यान्तर में मातृ सत्ता आविर्भूत होती है।' विराट चित्तत्व की प्राप्ति उसके बिना संभव नहीं। अभी भी अपने मित्र के मानसिक धरातल से मेरी दूरी बनी हुई थी। मैंने पूछा, क्या देश-काल के धरातल पर शाश्वत माँ के संस्पर्श उदाहरण मिल सकते हैं? वह मेरी ओर एक पल देखते रहे, शायद वह कुछ सोच रहे थे। उन्होंने पूछा, क्या तुम इस सच को कविता से नहीं समझ सकते? मैं चुप था, क्या कहूँ कुछ समझ नहीं आ रहा था, डर

Scanned with OKEN Scanner

था – कहीं उनसे मेरा सम्वाद न टूट जाए। उन्होंने कहा, जहाँ कहीं श्रेष्ठ और सुयोग्य है, वहाँ दूसरा कुछ नहीं, केवल कविता ही तो है, उसे अक्षर में दर्ज करते रहने वाला कवि कहा जाता है। इसी कविता को भाषण में दर्ज करके कोई व्यक्ति प्रभावकारी वक्ता हो सकता है, कर्मों में उतारकर कोई यशस्वी समाजसेवी हो सकता है, ईट गारों-पत्थरों में उतार कर शिल्पी बन सकता है।

कविता का सात्विक धरातल अक्षर जगत है, इसके रजो और तमो गुण के धरातल क्रमशः राजनीति और व्यवसाय हैं। कविता की व्याप्ति प्रत्येक क्षेत्र में है। इसकी प्राप्ति किस मात्रा में और किस स्तर की हुई है इसी बात पर निर्भर है कि किसमें शाश्वत माँ की कितनी अभिव्यक्ति है। तुम क्या सोचते हो राष्ट्र-भक्तों के हृदय में कोई अलग आवेग होता है? वह आवेग भी शाश्वत माँ का ही स्फुरण है।

मन्नू भंडारी नाम की एक लेखिका ने 'आपका बंटी' उपन्यास लिखा है। उस उपन्यास में बंटी इसलिए अनाथ हो जाता है कि उसका पिता दूसरी स्त्री के साथ हो जाता है और उसकी माँ दूसरे पुरुष के साथ। लेखिका ने बंटी के सवाल पर उन स्त्री-पुरुष पात्रों को बेपर्द किया, साथ ही घर की भक्तिन आया को भी पलायनवादी दिखाया है। उस आया के मुँह से भगवान की दुहाइयाँ तो निकल रही हैं पर वह है असमर्थ। आया के रूप में मन्नू ने असमर्थ विकल्पहीन परंपरा को दर्शाया है। शायद लेखिका को भारतीय परंपरा की गहराई में जाने का अवसर नहीं मिल पाया और न उसे भारतीय साहित्य की मूलभूत विशेषता का परिचय मिला है अन्यथा उसे सीता, शकुंतला जैसी माताएँ स्मृत होतीं।

बाल्मीकिकृत रामायण श्रीरामचंद्र के चरित का महाकाव्य नहीं, अपितु सीता के चरित की महत्ता बखान करने वाला काव्य माना जाता है। इसलिए कि उसमें माँ की श्रेष्ठतम सत्ता का प्रतिपादन है। पुरुष अपने पौरुष से परिभाषित हो सकता है तो स्त्री-पुरुष के समानान्तर पुत्र-पुरुष की जननी होने से परिभाषित होती है। इसलिए महाकवि कालिदास ने भी 'अभिज्ञान शकुंतलम्' की रचना शकुंतला के अभिज्ञान के लिए – उसकी वास्तविक पहचान के लिए की थी। यह अभिज्ञान – यह पहचान है क्या? शकुंतला की वास्तविक पहचान है उसका पुत्र भरत। माँ की परिभाषा संतान के अतिरिक्त और क्या होगी? सारा रूप

शृंगार-तप-व्रत-कष्ट-क्लेश इसीलिए तो है कि मातृत्व फलीभूत हो, वात्सल्य के आँचल में मंगल का प्रतिपालन हो। यही आनंद प्रसूत जगत का स्वरूप है।

मेरे मित्र ने अपने कथन में जब राष्ट्र-भक्तों के हृदय के आवेग में शाश्वत माँ की उपस्थिति बताई, मैं उसी पंक्ति पर वस्तुनिष्ठ दशा में इस प्रतीक्षा में टिका रहा कि जब वह साहित्य के अर्द्धमूर्त धरातल से उतरें तो मैं मातृ सत्ता और राष्ट्र के प्रसंग में कुछ सुनूँ। उन्होंने मुझे निराश नहीं किया। उनका कहना था भारत मातृभूमि है, पितृभूमि नहीं। मातृभूमि और पितृभूमि में अंतर यह है कि पितृभूमि की अवधारणा पुरुष-बर्बरता को प्रेरित करती है, उसे अक्रांता बनाती है, लूटेरा बनाती है, हिंसक बनाती है। लेकिन मातृभूमि की अवधारणा पारस्परिकता, मैत्री, सहोदर भाव और उदारता प्रदान करती है। क्योंकि मातृत्व ही भ्रातृत्व का उत्स है।

बाहरी देशों की पुरुष अवधारणा और भारत की पुरुष अवधारणा में निश्चय ही अंतर है। इसी प्रकार उसके प्रकृति अथवा स्त्री की अवधारणा में भी मूलभूत अंतर है। भारत की अवधारणा का पुरुष चैतन्य, निर्विकार, तटस्थ, सर्वमुक्त है और प्रकृति-प्रेरक है, सचेष्ट और सबोध है। वह स्वयं वरण करती है और संचालित भी, जड़ से लेकर ब्रह्म की आह्लादिनी सत्ता तक वही है, वह उर्ध्वमुखी है और अधोमुखी भी, साथ ही मध्य की सृजन स्थिति भी। वह राधा है, सीता है, गंगा है और पार्वती भी। वह ध्वन्स है, सृजन है और प्रतिचालक भी। ऐसी सजग, सजीव क्रियात्मक प्रकृति अन्यत्र नहीं है। अन्य भूखंडों के दार्शनिकों, साधकों ने प्रकृति को जड़ माना और पुरुष को प्रेरक, संचालक, शासक और वह सबकुछ जिसके आधार पर निर्मित अवधारणा अपने देश-धरा को मातृभूमि कहना स्वीकार नहीं करती। इस अवधारणा का ही अभिशाप है कि उन देशों को शाश्वत राष्ट्र होने का अधिकार नहीं मिला।

शाश्वत कौन रह सकता है? जिसमें निरंतरता हो, जिसमें एक के बाद एक रचते रहने की क्षमता हो। उज्ज्वल और स्वायत्त रचना किसकी होती है? जिसमें सत्वस्थ चित्त हो। भारत में यूँही नहीं स्वतंत्र-चेत्ता विराट संतानों का आविर्भाव होता रहता है। यह इसलिए होता है कि यहाँ का प्रकृति-गर्भ समुज्ज्वल है। यहाँ की चित्तवृतियाँ सबोध हैं, ये सब मातृ-सत्ता का प्रत्यक्ष वरदान है। इसलिए हमारी धरती मातृभूमि कही जाती है। हम अपने को भारत माँ की संतान कहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

भारत माता के विराट स्वरूप का दर्शन करने वाली अनेक महान विभूतियों में से जिन्होंने अपने प्रत्यक्षीकृत सत्य को बताया उनमें आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविन्द के कथन और प्रमाण प्राप्त होते हैं। उनके विचार मातृभूमि की अवधारणा पर आधारित हैं और पोषक भी। उनके आदर्श करुणा के पथ के हैं, क्योंकि वे आदर्श माँ के वात्सल्य से सिंचित हुए हैं।

धर्म की तथाकथित धारणाओं में भी दूसरों की हिंसा, लूट, आक्रमण-शोषण के विचार पितृवादी देशों में सुनाई पड़ती हैं। यह भी सुनने को मिलता है कि ऊपरवाला सच्चे इंसानों को बहुत सताता है। सच्चे व्यक्ति के पक्ष में सदा विजय की घोषणा तो केवल मातृभूमि भारत में ही मुखर हुई। श्री की सर्वसंपन्न धरती का वात्सल्य यही निर्झर बन बहा। कृतज्ञ मनुष्य ने अभेद भाव के वात्सल्य में तृप्त होकर इस भूखण्ड को माँ कहकर पुकारा।

विश्व के किस साहित्य में वात्सल्य-रस का उतना गहरा सागर लहरा सका – जितना भारतीय भाषाओं में लहरा पाया? यह अनायास नहीं है कि राघवेन्द्र स्वामी का भागवत-गान सुनकर श्रीकृष्णबाल रूप में आ उनके पास खेलने लगते थे। भगवती जगदम्बा बालिका रूप में आकर भक्त भक्त राम प्रसाद के गीतों में मगन हो जाती थीं। तुलसी बाबा के 'ठुमक चलत रामचंद्र बाजत पैजनियाँ' के स्वर केवल कल्पित काव्य नहीं हैं। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के पास आए एक साधु के रामलल्ला मूर्ति होने के बाद भी बाल क्रीड़ाएँ करते थे, जिन्होंने रामकृष्ण देव के निकट होने के बाद साधु के साथ लौटने से इनकार कर दिया वह प्रतिमा रूप में आज भी स्थापित हैं। वात्सल्य का यही प्रवाह महाकवि सूर के पदों में दिखाई देता है, जहाँ उनके श्रृंगार आदि अन्य रसों का विलय हो गया। वात्सल्य के मनोभाव में कवि की चेतना केवल मातृत्व में स्थिर रहती है और यह मनोभाव एक असाधारण अवस्था है। मातृभाव की साधना से श्रेष्ठ कुछ नहीं। अनुसूया जी के इसी भाव ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को बालरूप में परिवर्तित कर दिया था।

हमारे शास्त्रों ने मनुष्य को आसुरी प्रवृति से सावधान किया है। यह होश भारतीय जनमानस में इसलिए है कि यह भू-खंड मातृ-भूमि की गरिमा और बोध से मंडित रहा है। भारतवासियों का दायित्व है कि वे आज अपनी परंपरा के शक्ति-स्त्रोत को पहचानें और साथ ही अंधकार में डूबे-तमस में लिपटे विश्व के अन्य देशों को वात्सल्य का संदेश दें।

इतनी बड़ी अभेदकारी शक्ति दूसरी नहीं।

भारत को मातृभूमि कहने के पीछे प्रकृति के मातृशक्ति का प्रत्यक्षीकरण है। यहाँ के विचारकों-चिंतकों दार्शनिकों और कवियों की उच्च मनोभूमि इस मातृशक्ति को ही अभिव्यक्त कर संतृप्ति अनुभव करती है और उसी से वात्सल्य का निर्झर जगत में निरंतर झरता रहता है। जिन्हें 'वंदेमातरम्' के जयघोष में – भारत माता की जयकारों में संकोच होता हो उन्हें आत्मनिरीक्षण करना चाहिए कि कहीं वे बर्फ से पटे या रेगिस्तान से ढके भूखंडों की पितृभूमि की अवधारणा से ग्रस्त होकर दुर्बुद्धिवश शाश्वतता और अमरता देनेवाली वात्सल्य-धारा से वंचित तो नहीं हो रहे? भावशून्य हो हिंसक तो नहीं बनते जा रहे? ऐसों के लिए ही महिषामर्दिनी ने अपने हाथों में प्रचण्ड अस्त्र ले रखा है। यह कोई मिथक नहीं, घटित होने वाला सत्य है। इसके विपरीत पड़ने की आशंका इसलिए हो रही है कि पितृभूमि की आतंकी मानसिकता भारत की मातृभूमि को गरसने पर तुली हुई है और दिखाई यह दे रहा है कि आसुरी शक्तियाँ ज्यों ज्यों उत्साहित हो रही हैं भारत माँ की आँखों की दुग्ध धवल वात्सल्य धारा में रोष की लालिमा छाती जा रही है। कुछ देर चुप रहने के बाद मेरे मित्र ने पूछा, अब तो तुम्हें शाश्वत माँ के लोक-रूप का अनुमान लग रहा होगा? मैंने सिर हिलाकर सहमति जताई। उन्होंने कहा, मेरा मानना है कि आतंक और अलगाव हमारे राष्ट्र की प्रवृति नहीं।

यह प्रवृति वात्सल्य-पूरित भारत की धरती और समाज में कभी नहीं उपज सकती। यह आसुरी प्रवृति पितृभूमियों की प्रवृति हो सकती है। जहाँ बच्चों के मुँह से निकलती मौत की चीखें भी मनोरंजन का साधन होती हैं।

मेरे अंतरंग मित्र की भावना मातृभूमि की वात्सल्य-प्रधान प्रवृति की व्याख्या में जिस गति से धीरे-धीरे गहराई में उतरती जा रही थी मैं उसी गति से उनके साथ चलने में अपने को असमर्थ पा रहा था। लोग जानते हैं कि आतंकी संगठन कच्ची उम्र के लड़के-लड़कियों का उपयोग कर रहे हैं। काश्मीर के १८० उग्रवादी संगठनों में १८ वर्ष से कम आयु के बच्चे शामिल किए जा रहे हैं। इनमें लड़कियों की भी बड़ी संख्या है। आंध्रप्रदेश के नक्सली संगठन (पी. डब्ल्यू. जी.) ने आठ से पन्द्रह वर्ष के बच्चों की पचहत्तर टुकड़ियाँ बना रखी हैं, जिसकी एक-एक टुकड़ी में आठ-आठ सौ बच्चे हैं। यही सिलसिला बिहार, झारखंड, बस्तर, छत्तीसगढ़ के नक्सली संगठनों ने चला रखा है। पूर्वांचल के आतंकियों ने भी नाबालिग लड़के-लड़कियों को खूनी-खेल में शामिल कर रखा है नागालैंड के लगभग २० हजार आतंकियों में नाबालिग बच्चों की संख्या ५० प्रतिशत के लगभग बतायी जाती है। इनमें बारह से सोलह वर्ष की आयु की हजारों लड़कियाँ है, त्रिपुरा के आठ हजार उग्रवादियों की आधी संख्या लड़कियों की है इसमें एक हजार के लगभग नाबालिग बच्चे हैं। असम के बोडों लैंड लिब्रेशन टाइगर फोर्स, बोडो सिक्यूरिटी फोर्स और उल्फा में भी बड़ी संख्या में बच्चों को रखा गया है। यहाँ लगभग पचास हजार उग्रवादियों में आधी संख्या नाबालिग लड़कों की है। इनमें चार हजार लड़कियाँ हैं। मणिपुर में भी अबोध बच्चों के आत्मघाती दस्ते बनाए जा रहे हैं, इनमें भी सैकड़ों लड़कियाँ रखी गई है। इन संगठनों के पीछे बैठी हुई शैतानी खोपड़ियाँ अबोध बच्चों के खून में सनी हुई जिस किसी शासन-सत्ता

Scanned with OKEN Scanner

की कल्पना कर रही हों वह मानवीय संवदेना की दृष्टि से घोर निंदनीय है। क्या यह शूरता-वीरता का उदाहरण है अथवा जिंदा जिस्म के मरे हुए लोगों का कुकृत्य। नन्हे-मुन्ने बच्चे को हथियार बनाकर उसके जीवन के प्रश्रय और सुविधा को समाप्त करने वाले जन-समुदाय धरती पर रहने की मानसिकता में नहीं हैं। यह विपरीत बुद्धि विनाश की पूर्वसूचना है।

यही वात्सल्य की धारा के सूख जाने का दुष्परिणाम है, विश्व के भविष्य से अपनी समाप्ति की घोषणा है। जहाँ मातृ-सत्ता का सर्वोपरि स्थान नहीं होता, जहाँ वात्सल्य की शीलता नहीं बहती, वहाँ सर्वनाश की कुबुद्धि रहती है। इन पिशाचों का उद्धार तो केवल माँ की ममता ही कर सकती है।

आज वैज्ञानिकों की बहुत बड़ी संख्या खोज में लगी है कि प्रकृति के सृजन-गर्भ को कैसे वश में कर लिया जाए और मनमाने ढंग से नए उत्पादन कैसे किए जाए। इस दिशा में हुई क्षुद्र उपलब्धियों का ढोल पीटा जा रहा है। जैव प्रौद्योगिकी की सफलताएँ प्रशंसित की जा रही हैं। लेकिन इसके भयानक दुष्परिणामों से भी वैज्ञानिक अनभिज्ञ नहीं हैं। पर्यावरण और जैव विविधता के विनाश की संभावनाएँ चिंता का विषय बनी हुई हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने इन वैज्ञानिक अनुसंधानों को व्यवसाय का माध्यम बना लिया है। ये कंपनियाँ इन खोजों से फसलों के अन्य बीजों को नष्ट कर अपने जैव प्रौद्योगिकी से निर्मित बीजों पर लोगों की निर्भरता बढ़ा रही हैं ताकि अनभिज्ञ और पिछड़े देशों के निवासी उनके आश्रित हों और उनके शोषण का हिस्सा बनें। इस प्रकार के आक्रमण अन्य वनस्पतियों के 'मातृ-गर्भ' पर भी हो रहे हैं। प्रकृति में उपलब्ध जीवन के सभी पोषक-तत्वों पर एकाधिकार का आसुरी कुचक्र चल रहा है। आज वेबसाइट भी मनुष्य जाति के भविष्य अर्थात बच्चों को जीवन विहीन कर पैसे कमाने के षडयंत्रों में लगे हैं। साइबर अपराध की कुदृष्टि बाल-यौन के शोषण पर भी है, यह विज्ञान का आत्मघाती हमला भविष्य की संभावना को अनाथ बनाने के लिए हो रहा है। ऐसे में

आज वैज्ञानिकों की बहुत बड़ी संख्या खोज में लगी है कि प्रकृति के सृजन-गर्भ को कैसे वश में कर लिया जाए और मनमाने ढंग से नए उत्पादन कैसे किए जाए। इस दिशा में हुई क्षुद्र उपलब्धियों का ढोल पीटा जा रहा है। जैव प्रौद्योगिकी की सफलताएँ प्रशंसित की जा रही हैं। लेकिन इसके भयानक दुष्परिणामों से भी वैज्ञानिक अनभिज्ञ नहीं हैं।

मातृशक्ति का हस्तक्षेप नितांत आवश्यक है।

मनुष्य ही नहीं, जीव-जंतु और वनस्पतियों तक के जीवन भविष्य के लिए प्रकृति प्रदत्त वायु और जल पर भी व्यापारी पिशाचों की कुदृष्टि गड़ी हुई है। ये सभी आक्रांता-प्रवृतियाँ मातृ-सत्ता को नहीं स्वीकार करतीं। यह सिर-फिरी सोच प्रकृति को भक्ष्य समझती हैं। इसके दुष्परिणामों के विषय में शेष विश्व को भले न ज्ञात हो पर भारतीय शास्त्रों को है। हमारे शास्त्रों ने मनुष्य को आसुरी प्रवृति से सावधान किया है। यह होश भारतीय जनमानस में इसलिए है कि यह भू-खंड मातृ-भूमि की गरिमा और बोध से मंडित रहा है।

भारतवासियों का दायित्व है कि वे आज अपनी परंपरा के शक्ति-स्रोत को पहचानें और साथ ही अंधकार में डूबे-तमस में लिपटे विश्व के अन्य देशों को वात्सल्य का संदेश दें। अपने अंतरंग मित्र के कथन का आशय ही मैं अपनी अल्पमति से ग्रहण कर आप पाठकों तक पहुँचा सकूँगा, यह विश्वास मुझे पहले से था। क्योंकि वात्सल्य को प्रवाहित करने वाली मातृ-सत्ता की अभिव्यक्ति इतनी भाव-विगलित दशा में अवश्य होगी कि उसे सामान्य शब्दों में बाँधना कठिन होगा। उसे उदाहरण के साथ जोड़कर अधिक ग्राह्य बनाने के प्रयास में अभिव्यक्ति की विफलताएँ भी हाथ आ सकती हैं। अत: यथासंभव प्रयास कर क्षमा याचना के साथ मैं अपने असंतोष को छिपा लेना ही उचित समझता हूँ।

सचमुच उस दिन वृंदावन की भूमि पर ब्रह्मा-विष्णु-महेश को अपने वात्सल्य से बालक बना पालने में झुलाने वाली अनुसूया के मातृभाव का अवतरण देख मेरे मित्र का भावोद्रेक अस्वाभाविक नहीं था, जननी जन्मभूमि की गरिमा लोक-बोध में उद्वेलित हो तो विश्व के संकटों का अवश्य अंत होगा। आज की हहाकार का प्रमुख कारण सृष्टि जननी का विरोध है उस विराट और सजीव सत्ता की नासमझी है। यह विरोध, यह नासमझी दूर नहीं हुई तो विश्व में अनाथपन अभी और बढ़ेगा, अभी और हहाकार मचेगा। आतंकी प्रवृतियाँ अभी और दूधमूँहे बच्चों को मानव-बम बनाएँगी, जहाँ कहीं ममता-स्नेह-आस्था दिखेगा – जिस रूप में दिखेगा उसे छलने का प्रयास होगा। इसके उदाहरण केवल आतंकी संगठनों में ही नहीं हैं, फिल्मी दृश्यों में भी बच्चे का उपयोग दर्शकों की भावना के शोषण के लिए किए जा रहे हैं, यातना और मृत्यु-भय से घिरे बच्चे को दिखाकर दर्शक के हृदय में छिपे वात्सल्य को आहत करने का प्रयास हो रहा है। यहाँ तक कि बच्चे के रोने की आवाज को कारों के हॉर्न में भी व्यापारियों ने प्रयोग किया। लोक-भावना के शोषक किस हद तक जा सकते हैं इसके अनेक आपराधिक उदाहरण इन दिनों सामने आ रहे हैं, दुनिया की सरकारें, बच्चों के साथ बढ़ रहे अपराध को कानून से रोकने के प्रयास में लगी हैं। पर यह काम कानून के हाथों पूरा नहीं होगा, इसके लिए अनुसूया की सर्वोपरि मातृ-सत्ता को जनमानस में स्थापित करने का प्रयास होना चाहिए, इसके लिए मातृभूमि भारत की अवधारणा और विश्व के भविष्य के प्रति चिंता जगानी होगी, इसके लिए प्रकृति के विश्व-जननी का स्वरूप समझना होगा। बिना मातृत्व को जाने भ्रातृत्व की पहचान नहीं हो सकती और भ्रातृत्व के बिना विश्व-जीवन भय-संत्रास से भरा हो तो इसमें आश्चर्य क्या है? ■

Scanned with OKEN Scanner

आर्थिक सुधारों का दूसरा दौर

रुद्रदत्त

सरकार को दूसरी पीढ़ी के सुधारों में अपनी विकास रणनीति बदलनी होगी और इसके लिए निगम क्षेत्र पर बल कम करके ऐसे क्षेत्रों के पक्ष में नीति मोड़नी होगी जो गरीबों को लाभ पहुँचाएं। ये क्षेत्र हैं कृषि और कृषि आधारित उद्योग, लघु स्तर क्षेत्र, आधार संरचना की प्रोन्नति और सामाजिक सेवाएँ जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली जिससे समाज के कम संपन्न वर्गों को लाभ प्राप्त हो।

गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या के बारे में उपलब्ध प्रमाण से पता चलता है कि सुधार-प्रक्रिया ने गरीबी कम करने में सहायता नहीं दी। योजना आयोग के सदस्य डॉ. एस.पी. गुप्त ने सकल देशीय उत्पाद में वृद्धि और गरीबी में कमी को एक विलोम क्रम में रेखांकित किया है। उन्होंने यह संकेत किया है कि वर्ष १९९३-९४ में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या का अनुपात ३५.०७ प्रतिशत था जो १९९७ में बढ़कर ३७. २३ प्रतिशत हो गया। यह वह समय है जब सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि दर लगभग ६. ९ प्रतिशत प्रतिवर्ष रही, जो कि भारत में लगातार चार वर्षों के दौरान पहली बार इतनी अधिक थी। विश्व बैंक के डॉ. गौरव दत्त ने भी इस प्रकार के प्रमाण प्रस्तुत किए हैं और इस बात पर बल दिया है कि सुधार-अवधि के दौरान गरीबी में कमी की गति मंद हो गयी है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि जहां शहरी क्षेत्रों में गरीबी में कमी की गति १९९० के दशक में बनी रही, वहाँ ग्रामीण निर्धनता में कमी ग्राम-विकास के अभाव के कारण समाप्त हो गयी। विश्व विकास रिपोर्ट (२०००-२००१) ने १ यू.एस. डॉलर प्रतिदिन के आधार पर अंतरराष्ट्रीय गरीबी रेखा के आधार में भारत में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या का अनुपात ४४.२ प्रतिशत आंका है। इसका अर्थ यह है कि ४१.९ करोड़ व्यक्ति गरीब हैं। विश्व बैंक ने सारी दुनिया में ११९.९ करोड़ व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे होने का अनुमान लगाया है। विश्व के कुल गरीबों में भारत का अनुपात लगभग ३५ प्रतिशत है। यह एक अत्यंत दु:खद परिदृश्य है।

जहाँ तक नीतियों का संबंध है, उनमें तो उच्च वृद्धि दरों पर बल देना ही होगा क्योंकि वे गरीबी को कम करने के लिए अनिवार्य हैं, परंतु इसके साथ-साथ यह भी आश्वस्त करना होगा कि उच्च वृद्धि दर के साथ रोजगार विस्तार में वृद्धि की दर भी श्रमशक्ति में वृद्धि की दर से ऊंची होनी चाहिए। इसके लिए अर्थव्यवस्था के श्रम प्रधान क्षेत्रों को बढ़ावा देना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सुधार-प्रक्रिया को अतिलघु उपक्रमों और छोटे एवं मध्यम उद्यमकर्ताओं या फर्मों को प्रोत्साहन देना होगा ताकि वे अपने व्यापार का विस्तार कर सकें। ऋण एवं अन्य सहायक उपायों के रूप में नीति संबंधी उपाय लघु स्तर उद्योगों को रोजगार का विस्तार करने में सहायता दे सकते हैं।

गरीबों का सामर्थ्य बढ़ाने का एक और तरीका शिक्षा एवं स्वास्थ्य में विनियोग करना है ताकि वे रोजगार के नए क्षेत्रों का लाभ उठा सकें। गरीबों में सूचना-तकनोलॉजी, बायो-तकनोलॉजी और अन्य सूर्योदय उद्योगों में प्रशिक्षण देने के लिए विशेष उपाय करने चाहिए। दूसरी पीढ़ी के सुधारों को कृषि तथा गैर-फार्म क्रियाओं में विकास को त्वरित करने के उपाय करने चाहिए ताकि ग्राम क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता एवं रोजगार को बढ़ावा मिले। सुधारों को सिंचाई, बिजली ऊर्जा की उपलब्धि और सड़कों के रूप में ग्राम आधार संरचना के रूप में विनियोग करना चाहिए। मूल रूप में ग्राम-पुनरोत्थान गरीबी को कम करने की कुंजी है। चूँकि हाल के वर्षों में, ग्राम विकास अवरुद्ध हो गया है, दूसरी पीढ़ी के सुधारों को ग्राम विकास को केंद्र बनाना चाहिए और ग्रामों का आधुनिकीकरण करना चाहिए ताकि विकास और रोजगार के अवसरों का विस्तार हो। सशक्तिकरण से अप्रियाय गरीबों की क्षमता को इस प्रकार बढ़ाना है कि वे राजकीय संस्थानों के निर्णय करने की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकें क्योंकि इन निर्णयों से उनके जीवन पर असर पड़ता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गरीब वर्गों को संगठित करने के प्रयास करने चाहिए ताकि गरीब राज्य को उनके प्रति उत्तरदायी बनने के लिए मजबूर कर सकें। यदि अस्पताल, स्कूल, बैंक एवं अन्य संस्थान उनके द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली सुविधाओं को गरीबों को प्राप्त करने में सहायता देते हैं, तो गरीब वर्गों के संगठनों को जनतांत्रिक प्रेरित करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं तो गरीब वर्ग जनतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा ऐसी शासन-पद्धति से समर्थन वापस ले सकते हैं। निर्णय-प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों पर गरीबों के प्रतिनिधियों को स्थान मिलना चाहिए। इस प्रकार की नीति से समाज में गरीबों के सशक्तिकरण को बल मिलेगा।

परिवार के स्तर पर, रोजी-रोटी कमाने वाले की बीमारी का जोखिम सबसे बड़ा जोखिम सबसे बड़ा जोखिम है। इसी प्रकार, चक्रवात, बाढ़ एवं अन्य प्राकृतिक विपदाओं का गरीबों के जीवन पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। सरकार का मुख्य कार्यभाग इन जोखिमों के विरुद्ध गरीबों की रक्षा करना है ताकि इनके गरीबों पर होने वाले प्रभाव को कम से कम किया जा सके। इससे बीमारी, दुर्घटनाओं और प्राकृतिक विपदाओं के झटकों से गरीबों की सुरक्षा को बढ़ाया जा सकता है। मार्टिन रैविलयन ने सुधार उपरांत, विकास प्रक्रिया की समीक्षा करके यह निष्कर्ष निकाला है ऐसे संकेत जिनसे

Scanned with OKEN Scanner

यह पता चलता है कि गरीबी को कम करने की प्रक्रिया १९९० के पश्चात मंद हो गयी है, इस बात के लिए और भी बाध्य करते हैं कि अब ऐसे प्रयास करने चाहिए जिनसे भविष्य में गरीबों के पक्ष में विकास की परिस्थितियाँ सुनिश्चित हो सकें। वे कहते हैं कि विकास की संरचना गरीबों के लिए महत्वपूर्ण है। समग्र आर्थिक विकास का प्रभाव उसकी क्षेत्रीय एवं भौगोलिक संरचना पर निर्भर करता है। दूसरे उच्च कृषि उत्पादकता ग्रामीण-गरीबी को कम करने का मूल उपकरण है।

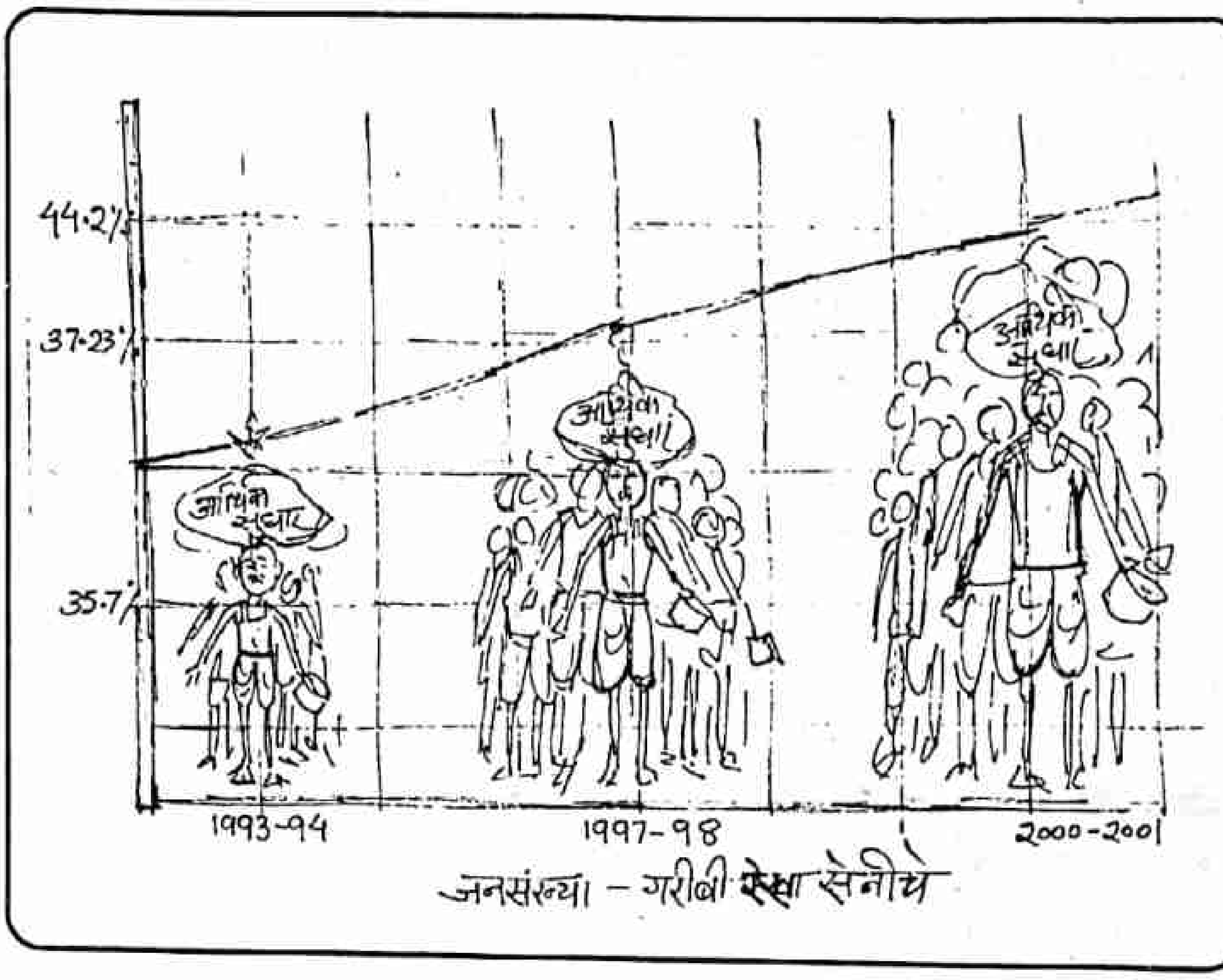

ग्राम एवं नगरीय गैर-फार्म विकास की गरीबों के पक्ष वाली प्रक्रिया के लिए ग्रामीण विकास और मानव संसाधन विकास दोनों जरूरी हैं। इसके साथ ही उनका मानना है कि बुनियादी स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर अधिक सार्वजनिक व्यय से गरीबों को काफी लाभ पहुँच सकता है। गरीबी में कमी को काफी लाभ पहुँच सकता है। गरीबी में कमी की गति मंद करने का मूल कारण तत्व यह है कि जब सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि दर १९९० के दशक में लगभग ६ प्रतिशत रह गयी, कृषि की वृद्धि दर में ३ प्रतिशत प्रति वर्ष के इर्द-गिर्द उच्चावचन होते रहे। जाहिर है भारत के विकास का ढांचा सुधार-ढांचा सुधार-उपरांत काल में गरीबों के पक्ष में नहीं रहा। परंतु मार्टिन रैविलयन का कहना है कि हाल ही के आर्थिक सुधारों में कायम की गयी नयी नौकरियों के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य में संभवत: जितनी योग्यता की आवश्यकता है, वह भारत के अधिकतर गरीबों की पहुँच के बाहर है।

ऐसे राज्यों में जहाँ ग्राम विकास एवं मानव संसाधन विकास की घटिया आरंभिक परिस्थितियाँ विद्यमान हैं, वहाँ उच्च गैर-फार्म विकास गरीबी को कम करने में कम प्रभावी हैं। ऐसा होने के परिणामस्वरूप सुधार प्रक्रिया प्रभावी रूप में गरीबी को कम करने में कामयाब नहीं हुई है। विश्व बैंक के देश संबंधी अध्ययन (जुलाई १९९७) में निम्नलिखित उपायों को गरीबी कम करने के लिए उचित माना है। कृषि में विनियोग से न केवल ग्रामीण भारत में जीवन स्तर उन्नत हुए हैं, परंतु ऐसा असमानताओं को बढ़ावा दिए बिना किया गया है। चाहे आरंभ में हरी क्रांति तकनीक के बारे में यह संदेह था कि वह केवल बड़े भू-स्वामियों को लाभ पहुँचाएगी, परंतु ऐसा अनुभव किया गया कि यह आकार-तटस्थ है। किसी भी भारतीय राज्य ने ऐसी नीतियाँ नहीं अपनायीं जो विकास को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ मानव संसाधन एवं भौतिक आधार संरचना को भी बढ़ावा दें। हाल ही के एक अध्ययन ने अनुमान लगाया है कि गैर-सर्वहितकारी वस्तुओं पर सकल देशीय उत्पाद का ११ प्रतिशत सब्सिडी के रूप में खर्च होता है जबकि स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर ५ प्रतिशत से कम और आधार संरचना पर लगभग ४ प्रतिशत। १९९१ के पश्चात केंद्र सरकार ने अपने साहाय्यों (सब्सिडी) को काट कर आधा कर दिया, परंतु जो उपलब्धि इसने की, राज्य सरकारों ने इन्हें बढ़ा कर निष्प्रभावी बना दिया। शिक्षा और स्वास्थ्य में विनियोग विकास प्रक्रिया को त्वरित और गरीबी को कम करने के लिए आवश्यक स्तर के नीचे रहा। शिक्षा में विनियोग सकल देशीय उत्पाद का ३.७ प्रतिशत था और स्वास्थ्य पर सकल देशीय उत्पाद का केवल १.३ प्रतिशत। प्राथमिक शिक्षा और प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इन्हें दुगुना करना होगा। गरीबी विरोधी कार्यक्रम जैसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली निर्धनों एवं गैर-निर्धनों दोनों को लाभ पहुँचाते रहे हैं। वर्ष २००० के दौरान सार्वजनिक वितरण के आधीन उपलब्ध कराए जाने वाले खाद्यान्नों की कीमतों को बढ़ाने से सस्ते मूल्य की दुकानों पर खाद्यान्नों के विक्रय में तीव्र गिरावट आयी है क्योंकि जारी कीमत और बाजार के मत में अंतर कम हो जाने से उपभोक्ताओं ने राशन के अनाज खरीदने बंद कर दिए हैं। इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक वितरण की दुकानों पर अनाज की घटिया किस्म उपलब्ध होने के कारण भी गरीब उपभोक्ता अपना राशन वहाँ से नहीं लेते। सरकार की विवेकहीन नीति ने अब सरकार के लिए कठिन परिस्थिति कायम कर दी है और अब सरकार ऐसे उपायों की भरसक तलाश कर रही है जिनके प्रयोग से खाद्यान्नों के स्टाक किसी प्रकार इस्तेमाल हो सके और वे गोदामों में सड़ने शुरु न हो जाएं। सरकार इनकी कीमतों में भी कमी कर रही है।

निष्कर्ष यह है कि सरकार को दूसरी पीढ़ी के सुधारों मे अपनी विकास रणनीति बदलनी होगी और इसके लिए निगम क्षेत्र पर बल कम करके ऐसे क्षेत्रों के पक्ष में नीति मोड़नी होगी जो गरीबों को लाभ पहुँचाएं।

ये क्षेत्र हैं कृषि और कृषि आधारित उद्योग, लघु स्तर क्षेत्र, आधार संरचना की प्रोन्नति और सामाजिक सेवाएँ जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली जिससे समाज के कम संपन्न वर्गों को लाभ प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों को भी इनमें शामिल करना होगा ताकि केंद्र एव राज्य दोनों एक जुट होकर कार्य करें। साधन गतिमान करने के लिए के केंद्र एवं राज्य दोनों को अपने साहाय्य कम करने होंगे और सिंचाई, बिजली और सड़क परिवहन सेवाओं के उपलब्ध करने के लिए लागत वसूली करनी होगी। शिक्षा पर भी निहित साहय्यों मे जिनसे संपन्न वर्गों को लाभ होता है, कटौती करनी होगी। ■

Scanned with OKEN Scanner

आयातित तेल से स्वास्थ्य को खतरा

जब ड्राप्सी काण्ड के षडयंत्रकारियों ने घानी तेल की साख को बर्बाद कर दिया, सर्वोच्च न्यायालय ने २३ मई, १९९९ को पैकिंग बंद बिक्री का आदेश दिया। इस आदेश और सरकारी खाद्य नीति से खाद्य तेलों के बाजार पर आयात किए तेलों का असर पड़ने लगा। पैकिंग की सुविधा वाले बड़े तेल उद्यमी बिगड़ती हालत के बाद भी बाजार में टिके हुए हैं लेकिन गाँव के छोटे-छोटे पारंपरिक उद्यमियों और छोटे शहरों के उद्यमियों का तो प्रायः अंत ही हो गया। खाद्य तेल की पैकिंग हमें कहाँ तक स्वास्थ्य सुरक्षा की गारंटी दे सकती है क्या कानून और दण्ड व्यवस्था इस समस्या का अंतिम हल पा सकती है? शायद नहीं। इस व्यवस्था की एक सीमा है। भारत के ग्रामीण जन-जीवन में विभिन्न उत्पादनों से जुड़े लोगों से पारस्परिक निर्भरता और पारिवारिक भावना की रचना कर हमारी परंपरा ने उपभोक्ता और उत्पादक के बीच अधिकतम निकटता स्थापित करने में सफल प्राप्त की थी। गाँव का तेल उत्पादक लाभ और सामाजिक दायित्व दोनों के बीच के व्यवहार को भली-भाँति समझता था। नवजात शिशु को पालने-पोसने के लिए पुराने सरसों के जिस तेल की आवश्यकता होती है, क्या उस तेल की आपूर्ति बाजारू मानसिकता से की जा सकती है? उस तेल को तो तेल निकालने वाली एक अदद माँ ही धरती पर नए-नए आए अपनी संतान सरीखे शिशु को पोषित करने के लिए दे सकती है। माँ के भावभरे तेल की जगह को क्या कोई सील बंद तेल ले सकता है? नहीं ले सकता। इस पारस्परिक भाव भरे तेल को पाने के लिए हमारे सामने नए समय के साथ बहुत गहराई तक सोचने और करने की चुनौतियाँ हैं। बिल्कुल आर्थिक दृष्टिकोण से व्यवस्था बनाए तब भी हमें अधिक से अधिक रोजगार पैदा करने के बारे में बात करनी होगी। आज हाल यह है कि खाद्य तेल उद्योग संकट में पड़े हुए हैं। तेलहन की कीमत गिरती जा रही है, खेती कम होती जा रही है। विदेशी तेलों के आयात से भारतीय खाद्य तेल का बाजार नष्ट होता जा रहा है। परिणाम यहाँ तक सामने आ रहा है कि अनावश्यक रूप से आयात किए जा रहे अविश्वसनीय खाद्य तेलों से आर्थिक क्षति ही नहीं, अपितु घातक बीमारियाँ भी फैल रही हैं।

इस विषय पर हिंदुस्तान से विष्णु प्रकाश श्रीवास्तव का एक लेख साभार. . . सं.

खुले आयात ने जो दुर्गति भारत में लघु उद्योगों की कर डाली है, वही दशा भारतवासियों के स्वास्थ्य की आयातित तेल पाम और सोया तेल से होने वाली है। जोधपुर से सर्जन डॉ. भंडारी लिखते हैं कि हम अपने अनुभवों से देख रहे हैं कि ट्यूमर एवं एथिरोस्कलोसिस के रोगी एकाएक बहुत तेजी से बढ़ रहे हैं।' सोयाबीन के विषय में तथ्यों के प्रचार-प्रसार द्वारा इसके उपयोग को रुकवाने में चिकित्सकों और बुद्धिजीवियों का उन्होंने आह्वान किया है। अजमेर के मेडिसिन विशेषज्ञ डॉ. प्रदीप शारदा शिकायत करते हैं कि 'हमारे चिकित्सक, शोधकर्ता पाँचसितारा होटलों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा प्रायोजित गोष्ठियों में हृदय रोगों के बढ़ने का शोर तो करते हैं व बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दवा लिखने की प्रेरणा भी देते हैं, परंतु आज तक किसी भी शीर्ष संगठन, चाहे एसोसिएशन ऑफ फिजीशियन ऑफ इंडिया हो या कार्डियोलॉजिकल सोसाइटी ऑफ इंडिया ने इसके अध्ययन के लिए कोई शोध गतिविधि नहीं चलाई है न ही सरकार ने इसकी सुधि ली है।' स्वस्थ रहने के लिए परंपरागत तेलों का (मात्रा कम रहे) ही प्रयोग करें, परंतु उपयोग करने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि इसमें मिलावट न हो।

खाद्य एवं आपूर्ति मामले की लोकसभा समिति की छठी रिपोर्ट २० अप्रैल २००० को लोकसभा में प्रस्तुत की गई जिसमें कहा गया है कि 'खुले आयात के अंतर्गत १९९९-२००० में २९ लाख टन खाद्य तेल आयात किया गया जबकि कमी केवल १४.५६ लाख टन की थी, तथा पिछले वर्ष ४३ लाख टन खाद्य तेल आयात किया गया, जबकि कमी केवल १९.३८ लाख टन की थी। . . .समिति सिफारिश करती है कि सरकार को खाद्य तेल का आयात आपूर्ति में कमी से अधिक नहीं करना चाहिए।' आवश्यकता से दोगुना से भी अधिक आयात होने और उस पर रोकटोक या मॉनिटर करने के लिए सरकार द्वारा उठाए कदमों के बारे में समिति द्वारा पूछे जाने पर संबंधित सचिव का उत्तर भी रिपोर्ट में दर्ज है। सचिव, सरकार द्वारा किए गए उपायों को बताना टाल कर उन कारणों को गिनाते हैं – जिनसे यह स्थिति पैदा हुई। उनके अनुसार कृषि मंत्रालय और उद्योग द्वारा आपूर्ति संबंधित आँकड़ों में भावी अंतर और माँग संबंधी योजना आयोग और आपूर्ति विभाग के आँकड़ों में अंतर तथा अंतरराष्ट्रीय बाजार में तेल की कीमतों में गिरावट तथा परंपरागत भारतीय तेलों के मूल्य की स्थिरता के कारण यह स्थिति बनी है। सारांश यह है कि 'ग्लोबलाइजेशन' के इस दौर में सरकार असमर्थ है या यूँ समझिए कि अभी भारतीय नौकरशाही भूमंडलीकरण की चुनौतियों के लिए तैयार नहीं है। तेजी से आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते हुए खाद्य उद्योग को ऐसा झटका लगा कि तेल

Scanned with OKEN Scanner

उत्पादन से जुड़ी हजारों छोटी इकाइयाँ बंद हो चुकी हैं और दस लाख लोग बेरोजगार हो चुके हैं। इतना ही नहीं राजस्थान के भरतपुर संभाग में सरसों उपजाने वाले किसान इतना डरे हुए हैं कि सरसों की खेती करने वाले क्षेत्र में चौथाई हिस्से में भी बुवाई का काम इस वर्ष नहीं हुआ। स्वास्थ्य संबंधी पहल पर समिति की रिपोर्ट में कोई चर्चा नहीं है। लोकसभा की समिति की रिपोर्ट के सात महीने बाद, आजादी बचाओ आंदोलन संबंधी तिलहन और तेल उद्योग के १० सितंबर के विशाल सम्मेलन तथा सांसदों को भेजे पत्र के फलस्वरूप कुछ दिखावटी कदम उठाए गए। आयातित तेल पर आयात शुल्क बढ़ाया गया। रिफाइण्ड पामोलिन पर शुल्क ३५ प्रतिशत से बढ़ाकर ६५ प्रतिशत और कच्चे पाम तेल पर १५ प्रतिशत से बढ़ाकर २५ प्रतिशत किया गया। रिफाइण्ड पर सरचार्ज आदि मिलाकर रिफाइण्ड और कच्चे पाम तेल पर आयात शुल्क का अंतर है। ४७ प्रतिशत परिणामस्वरूप रिफाइण्ड पाम को भी कच्चे पाम के दस्तावेज से मँगाया जा रहा है। तेल उद्योग की बर्बादी का सरकार सात महीने से आयात के खर्च में खाद्य तेल पर विदेशी मुद्रा का खर्च सभी आयातित वस्तुओं में नम्बर दो पर पहुँच गया। इस दयनीय स्थिति से उबरने के लिए जो हास्यास्पद कदम उठाए गए, उन्हें दो सप्ताह में बराबर कर दिया गया। अब रिफाइण्ड पाम २४५ डॉलर प्रति टन के स्थान पर २२२ डॉलर प्रति टन और कच्चा पाम तेल २०५ डॉलर प्रति टन के स्थान पर १९५ डॉलर प्रति टन बेचा जा रहा है। संसदीय समिति के घोषणा 'आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य 'जहाँ का वहाँ' धरा रह गया और भूमंडलीकरण का पहिया रौंदता चला जा रहा है।

डॉ. प्रदीप शारदा के पास एक तेल का व्यापारी रोग के कारण भर्ती हुआ। पूछने पर मालूम हुआ कि दुकान पर वही तेल रखता है जो सबसे सस्ता होता है – अर्थात् सोया या पाम। यह पूछने पर कि यदि कोई ग्राहक मूंगफली, तिल या सरसों का तेल चाहता है तो उसने बताया कि उसे वही तेल मूंगफली, तिल आदि का बता कर दिया जाता है। रिफाइण्ड का कमाल है कि रंग और गंध से विहीन तेल का जो नाम देकर बेचना चाहो बेचो। परंपरागत तेल सरसों, तिल, मूंगफली आदि तो बिना रिफाइण्ड किए खाए जा सकते हैं और सदियों से खाए जाते हैं, किंतु सोया या पाम बिना रिफाइण्ड किए खाने योग्य ही नहीं हैं।

पाम के तेल में एस्ट्रीन नामक अवांछित पदार्थ होता है, जिसे रिफाइन करने की प्रक्रिया से निकाला जाता है। पाम के तेल में संतृप्त वसा की मात्रा अच्छी प्रतिशत तक होती है जिसे मानव तंत्र पचा नहीं पाता। सोया तेल में पॉली अनसेचुरेटेड वसा अम्ल की अधिकता होती है, जो मानव रक्त में पहुँच कर हानिकारक एल.डी.एल कोलेस्ट्राल दोनों को कम करते हैं। ग्रेन विश्वविद्यालय (ऑस्ट्रिया) अलैक्जैन्ड्रिया विश्वविद्यालय (मिश्र), अंकारा विश्वविद्यालय (तुर्की) के शोध कार्य ने सोया, सूरजमुखी और पाम के तेल के खतरों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। यूरोप में अमरीका के सोया तेल को इस आधार पर लेने से मना कर दिया गया कि उसमें प्रयोग किया गया सोया जैव तकनीकी विधि से उपलब्ध है। इन तथ्यों पर पर्दा डालते हुए बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दलाल सोया और पाम के तेल में कोलेस्ट्राल न होने का ढोल पीटते रहे, जबकि सत्य यह है कि किसी भ वनस्पति तेल में कोलेस्ट्राल नहीं होता।

संसदीय समिति की रिपोर्ट में बजटी प्रावधान के २५ लाख रुपए से बढ़ाकर १० लाख (१९९९-२०००) और फि (२०००-२००१) के लिए इसे बढ़ाकर १८ लाख रुपए करने के बावजूद खाद्य तेल आत्मनिर्भरता के लिए सरकार द्वारा ठो उपाय और शोध न करने की आलोचना क गई है। किंतु चिंता की बात यह है कि संभवत: व्यापक प्रचार से प्रभावित होक समिति ने बिहार, असम, उड़ीसा, आंध्र प्रदे और उत्तर प्रदेश में उपलब्ध पाम से ते निकालने की संभावना का प्रस्ताव रखा है आयुर्वेद तिल के ते को सर्वोत्तम और कुसु को निकृष्टतम बता है, सरसों का ते औषधि रूप में इस्तेमाल होता है। प्रच की आँधी के बी आधुनिक वैज्ञानिक शो के साथ-साथ परंपराग आहार के वैज्ञानि आधार को समझ हमारी स्वास्थ्य रक्षा लिए आवश्यक गया है।

नेस्ले कंपनी ने अपने डिब्बा बंद दू की बिक्री के लिए अपनी सेल्स गर्ल्स क जच्चा-बच्चा वार्ड में नर्सों की पोशाक महिलाओं को मुफ्त नमूने बाँटे और नवजा शिशुओं को अपना दूध न पिलाकर सौंद बचाने की सलाह दी। परिणामस्वरूप प्रतिव लाखों बच्चे माँ के पौष्टिक दूध से वंचि होकर मरने लगे। लम्बे संघर्ष के बा विश्व स्वास्थ्य संगठन उनकी कुटि विज्ञापनबाजी को रोक पाई। खाद्य तेल आयात में तो सैकड़ों गुना बड़े निहि स्वार्थ जुड़े हैं। यदि वैज्ञानिक, चिकित्स और जन संगठन जल्दी न खड़े हुए परंपरागत खाद्य तेल दवा की दुकानों मिला करेगा।

Scanned with OKEN Scanner

बासमती की तरह 'काला नमक' चावल की रक्षा भी जरूरी है

धीप्रज्ञ द्विवेदी

इस जागरुकता के आने में एक कारण यह भी है कि हॉलैण्ड में एक भारतीय मूल के व्यक्ति ने काला नमक धान की खेती प्रारंभ की है। वहाँ काला नमक पर शोध किया जा रहा है। यह उत्तम कोटि का चावल जब शोध का विषय बन चुका तो निश्चय ही इसके पेटेंट की योजना भी होगी। अर्थात् अब 'काला नमक' चावल भी बासमती चावल की तरह पेटेंट के घेरे में फँसने जा रहा है और तब काला नमक एक ब्राण्ड नाम होगा और इस नाम के चावल की बिक्री का अधिकार पेटेंट धारक के हाथ में होगा। परंपरा से प्राप्त यह संपत्ति दूसरे के हाथ में चली जाएगी. . .

धान की उपज के लिए उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थ नगर जिले की जलवायु और मिट्टी की विशेषता का पता लगते ही वहाँ दिल्ली की एक निर्यातकर्त्ता मित्तल ग्रुप ऑफ कम्पनीज़ पहुँची। इस देशी कंपनी को जानकारी थी कि सुगंधित और अच्छे किस्म के चावल इस क्षेत्र में होते हैं। उसने इस क्षेत्र के किसानों को 'पाकिस्तानी बासमती के बीज मुफ्त बाँटकर इस पराये धान की खेती के लिए किसानों को उत्साहित किया।' यहाँ लगभग ६०० एकड़ भूमि में पाकिस्तानी बासमती धान की बुआई हुई। यह कंपनी दस रुपए किलो के भाव से इस धान की खरीद कर रही है। कंपनी की रणनीति है कि अगली बार हिमालय की इस तराई के जिले की सारी उर्वर भूमि पर पाकिस्तानी, तरावड़ी और पूसा की बासमती धान का एकक्षत्र साम्राज्य स्थापित कर दिया जाएगा। लगभग पाँच करोड़ रुपए के धान की खरीद की आशा से यहाँ के किसानों को जोड़ गया है।

निर्यात्तकों की होड़ इस क्षेत्र में बढ़ती जा रही हैं ये निर्यातक बिना कीमत के धान की अनेक प्रजातियों के बीज किसानों में बाँट रहे हैं और उपज की खरीद की गारंटी दे रहे हैं। किसानों को पैसे की लालच में लपेट कर ये निर्यात्तक कोई गलत काम भी कर रहे हैं क्या? शायद इसका ध्यान न किसानों को हो और न निर्यात्तकों को लेकिन इसी काम से कुछ मिलता जुलता काम बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी देश में कर रही हैं उनके बीजों में भारी उपज के बदले घातक परिणाम भी साथ-साथ गूँथे हुए हैं। कीड़ों का प्रकोप, बाँझ करने वाले जीन का आतंक, रसायनिक खाद अधिक पानी और कीट नाशकों से खराब होती जलवायु-रोगी होती मिट्टी का संकट देखकर दुनियाभर के किसान बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आक्रमकारी मानते हैं इनके हमले से भारत के कई उपजाऊ क्षेत्र तबाह हुए हैं। इन विदेशी कंपनियों के उद्देश्य यही हैं कि दुनिया के खाद्य पदार्थों के बाजार पर कब्जा किया जाए और खूब पैसे बटोरे जाए। पैसा कमाने के लिए अन्न, जल-वायु भूमि और आम जन जीवन का सर्वनाश करने में इन्हें कोई अपराध बोध नहीं होता इस कुप्रवृत्ति को ये दानव वीरता समझ रहे हैं लेकिन जिस प्रकार प्रकृति और प्राणी-जीवन की रक्षा के लिए चारों ओर से आवाजें उठ रही हैं विश्व के लोग जाग रहे हें इन्हें एक न एक दिन अपराधी बन कर दण्ड भुगतने के लिए विवश होना पड़ेगा।

देशी निर्यातक भी अपराध के दायरे में माना जाएगा यदि वह जैव विविधता और बीजों की क्षेत्रीय प्रजातियों को समाप्त कर अपना व्यापार चलाने पर तुलती है। हुआ यह हैं कि उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थ नगर जिले में उपजने वाले 'काला नमक' नाम का उत्तम श्रेणी के धान की खेती संकट से घिरती जा रही है। जब इस जिले की उर्वर भूमि पर निर्यातकों की इच्छानुसार धान उपजाए जाएँगे और इनकी इच्छा निर्यात के बाजार की इच्छा से संचालित होगी तब क्षेत्र की मूलभूत विशेषता वाली धान की प्रजातियाँ बेदखल होकर एक न एक दिन विनष्ट हो जाएँगी। यह चमत्कार पशुधन के क्षेत्र में हो चुका है देशी गौवें समाप्त हो रही हैं। जबकि उनके थोड़ी मात्रा के दूध की गुणवत्ता का मुकाबला अधिक दूध देने वाली तथाकथित विदेशी गाएँ नहीं कर सकती है। खोजों से यह भी ज्ञात होने लगा है कि देशी गौवों के दूध के अनेक गुण हैं। इसी प्रकार जिन धान की प्रजातियों का बाजर भाव ठीक नहीं है उसका रूप रंग बिकाऊ नहीं हैं उसमें सुगंध कोई नहीं है एक दिन खोजकर्त्ता यह जानेंगे कि इसकी पौष्टिकता और स्वाद की किसी धान से तुलना नहीं है। यह खोज होने के पहले व्यापारी धान के अनाकर्षक बीजों की प्रजातियों का विनाश कर चुके होंगे। व्यापारियों के शैतानी पंजे से बचने का एक सहज रास्ता

Scanned with OKEN Scanner

यही है कि लालच से बचना होगा।

क्षेत्रीय धानों की प्रजातियों की रक्षा करने के प्रयास में जागरुकता का ही परिणाह है कि 'बासमती चावल' के लिए जिस तरह की जागरुकता दिखी थी आज काला नमक चावल के लिए भी सामाजिक और संस्थागत जागरुकता दिख रही है। सिद्धार्थ नगर, उत्तर प्रदेश में काला नमक धान के बीच की रक्षा के लिए जागरुकता आई है इस जागरुकता के आने में एक कारण यह भी है कि हॉलैण्ड में एक भारतीय मूल के व्यक्ति ने काला नमक धान की खेती प्रारंभ की है। वहाँ काला नमक पर शोध किया जा रहा है। यह उत्तम कोटि का चावल जब शोध का विषय बन चुका तो निश्चय ही इसके पेटेंट की योजना भी होगी। अर्थात् अब 'काला नमक' चावल भी बासमती चावल की तरह पेटेंट के घेरे में फँसने जा रहा है और तब काला नमक एक ब्राण्ड नाम होगा और इस नाम के चावल की बिक्री का अधिकार पेटेंट धारक के हाथ में होगा। परंपरा से प्राप्त यह संपत्ति दूसरे के हाथ में चली जाएगी, इस चिंता से समाज को अवगत कराने और इसके संरक्षण संवर्द्धन में एग्रो नाम की कंपनी से जुड़े एक कृषि वैज्ञानिक और धान शोध संस्थान (सी.आर.आर.आई.) कटक के वैज्ञानिक लगे हुए हैं। रूप और सुगंध और स्वाद से भरपूर इस चावल ने कभी अंग्रेज बहादुरों को भी चहेता बन गया था। विलियम वर्ड और डब्ल्यू.एच. पेप्पे नाम के अंग्रेज साहबों को यह चावल इतना भया कि वे इसे लंदन ले गए थे। अंग्रेजों के शासन में यह महत्व सब को नसीब नहीं होता था। आज काला नमक अपनी ही भूमि पर बेदखल हो रहा हैं और बाहरी देशों में इसको ले लेने का साजिश चल रहा है। किसानों को इसकी रक्षा में उस तर कटिबद्धता दिखानी चाहिए जैसे वह अपनी भूमि के लिए कटिबद्ध होता है भूमि और बीज मनुष्य-वंश की तरह रक्षणीय माना जाता है समय के बदले हुए रंग ढंग में अपनी रक्षा का चतुर्दिक प्रयास किए बिना अस्तित्व नहीं बच सकता। ■

समाचार परिक्रमा

खस्ता हाल निजी कंपनियों के अधिग्रहण से हुई सार्वजनिक क्षेत्र की छवि खराब

भले ही सरकार की विनिवेश नीति के चलते सार्वजनिक उपक्रम निजीकरण के कगार पर खड़े हैं, लेकिन आज भी प्रदर्शन के लिहाज से कई मामलों में सार्वजनिक क्षेत्र निजी क्षेत्र के मुकाबले अपनी श्रेष्ठता साबित कर रहा है। यदि वित्तीय सेहत और स्थिति को आधार माना जाए तो भी सार्वजनिक उपक्रम निजी क्षेत्र के मुकाबले काफी आगे बने हुए हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र विनिवेश के जरिए निजी हाथों में जाने को एकदम तैयार खड़ा है, लेकिन यही सार्वजनिक क्षेत्र समय-समय पर निजी क्षेत्र की बीमार इकाइयों के अधिग्रहण के जरिए रोजगार की स्थिति में संतुलन बनाता रहा है। निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र के प्रदर्शन को लेकर किए गए एक तुलनात्मक अध्ययन में कहा गया है कि लाभ अर्जन की दृष्टि से सार्वजनिक उपक्रम निजी क्षेत्र की इकाइयों से कहीं आगे हैं। 'भारत में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के प्रदर्शन का तुलनात्मक अध्ययन' नामक रिपोर्ट में उदारीकरण के प्रभावों का जिक्र भी किया गया है। रिपोर्ट के मुताबिक उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के बाद सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों ने अपने वित्तीय प्रदर्शन में लगातार सुधार दर्ज किया है।

सार्वजनिक क्षेत्र की शीर्ष संस्था स्कोप द्वारा कराए गए इस अध्ययन के मुताबिक चूँकि सार्वजनिक क्षेत्र का मुख्य उद्देश्य सामाजिक दायित्वों को पूरा करना भी है जबकि निजी क्षेत्र पर इस तरह के कि दायित्व का बोझ नहीं है। इसके बावजूद वि प्रदर्शन के मामले में सार्वजनिक क्षेत्र नि कंपनियों से आगे रहने में सफल रहा रिपोर्ट के मुताबिक सार्वजनिक क्षेत्र के लि प्रदर्शन का लक्ष्य भी निर्धारित होता है। इस लिए सार्वजनिक इकाइयाँ उदारीकरण से पह तक अनिवार्य रूप से सरकार के साथ एमअ करती आयी हैं। जबकि निजी क्षेत्र के लि इस तरह की कोई बाध्यता नहीं है। सेंटर फ इंडस्ट्रियल एंड इकोनॉमिक रिसर्च द्वारा कि गए इस अध्ययन में कहा गया है कि तय श प्रदर्शन को प्रतिस्पर्धी बाजार में प्राप्त क किसी भी कंपनी के लिए टेढ़ी खीर सा हो सकता है।

रिपोर्ट के मुताबिक सार्वजनिक क्षेत्र छवि खराब करने में उन कंपनियों की महत्त्व भूमिका रही है जिसका समय-समय पर ख हालत में सार्वजनिक क्षेत्र ने निजी क्षेत्र अधिग्रहण किया है। लेकिन सरकार से उ सहयोग नहीं मिलने के कारण आज भी कंपनियों की स्थिति में सुधार नहीं किया सका है जिसकी वजह से सार्वजनिक उपक्र की छवि खराब हुई है।

आर्थिक उदारीकरण के बाद भार उद्योग में हुए समायोजन का जिक्र करते रिपोर्ट में कहा गया है कि निजी क्षेत्र की कंपनियों पर इसका विपरीत प्रभाव हुआ कुछ कंपनियाँ तो वित्तीय दृष्टि से बुरी त विफल साबित हुई हैं। कई कंपनियाँ या इस आर्थिक समायोजन में बंद हो गयीं फिर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों बिक ग हैं। इसके अलावा निजी क्षेत्र की कई कंपनि प्रबंधन के लिहाज से भी डिफॉल्ट साबित हैं। इतना ही नहीं रिपोर्ट के मुताबिक कि ही कंपनियाँ ऐसी हैं जो अपने शेयरधारकों लाभांश की अदायगी तक नहीं कर रही इसके मुकाबले सार्वजनिक उपक्रमों का लाभ रिकार्ड शानदार रहा है।

Scanned with OKEN Scanner

वैश्वीकरण का सफर : सभ्यता से असभ्यता तक

नरेश सिरोही

'सभ्यता' शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है। इसकी कुछ खास विशेषताएं हैं। यह एक जीवन पद्धति भी है। सभ्यता का संबंध मानव की भौतिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति से है। बर्बरता और सभ्यता दोनों विरोधी शब्द हैं। सभ्यताओं के साथ-साथ संस्कृतियों का विकास हुआ। 'संस्कृति' का संबंध मानव की अध्यात्मिक, भावनात्मक और कलात्मक उन्नति से है। जो मानव काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद से जितना दूर रहे, वह उतना ही अपने आप को संस्कारित कहलवाने का दावा कर सकता है। मानव पहले असभ्यता की अवस्था से ऊपर उठकर सभ्य बनता है और तब उसमें संस्कृति का विकास होता है।

वैश्वीकरण कोई नयी बात नहीं है, मानव जाति की प्रगति के साथ-साथ इसका सफर शुरु हुआ है। यूँ तो पचास हजार वर्ष ईसा. पूर्व, यानी प्राग इतिहास काल से ही मानव ने प्रगति के कदम बढ़ाए थे। लेकिन लगभग सात हजार वर्ष ई.पूर्व से विश्लेषित होने वाले पुरातत्वों तथा अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों के कारण इतिहास काल माना जाता है। इन्हीं समय मानकों के आधार पर मानव की प्रगति का अनुमान होता है। मानव को नदियों के किनारे मिट्टी जल और अन्न आसानी से मिल जाता था। मिट्टी घर बनाने के लिए, खेती कर अन्न उपजाने के लिए और जल खेती की सिंचाई और पीने के लिए। इसीलिए भारत में सिंधू, गंगा, आदि नदिया, चीन में याँगत्सी-ह्वांगहो नदिया, मेसोपोटेमिया में दजला-फरात नदिया और मिस्र में नील नदी के किनारे से मानव जाति की उच्च सभ्यताओं की विकास यात्रा प्रारंभ हुई। उसके बाद समुद्र कालीन व महासागर कालीन सभ्यताओं का दौर शुरु हुआ। आर-पार जाने के लिए नौकाओं का अविष्कार हुआ। गाँव व नगर बसने लगे, लोगों को एक-दूसरे से वस्तुओं के आदान-प्रदान की आवश्यकता महसूस होने लगी और यहीं से शुरु होता है व्यापार यानी वैश्वीकरण का आधार।

इस तरह पूरी दुनिया में अनेक सभ्यताओं का जन्म हुआ। इस 'सभ्यता' शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है। इसकी कुछ खास विशेषताएं हैं। यह एक जीवन पद्धति भी है। सभ्यता का संबंध मानव की भौतिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति से है। बर्बरता और सभ्यता दोनों विरोधी शब्द हैं। सभ्यताओं के साथ-साथ संस्कृतियों का विकास हुआ। 'संस्कृति' का संबंध मानव की अध्यात्मिक, भावनात्मक और कलात्मक उन्नति से है। जो मानव काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद से जितना दूर रहे, वह उतना ही अपने आप को संस्कारित कहलवाने का दावा कर सकता है। मानव पहले असभ्यता की अवस्था से ऊपर उठकर सभ्य बनता है और तब उसमें संस्कृति का विकास होता है।

पूरी दुनिया के सभ्य समाज ने एक सभ्य वैश्वीकरण की नींव रखी थी। एक-दूसरे की जरूरतों के आधार पर व्यापार होता था। वह व्यापार मानव समाज के पोषणं के लिए था, शोषण के लिए नहीं। ढाई तीन हजार वर्ष पूर्व में भारत से लेकर पश्चिम में स्पेन व ब्रिटेन तथा बाल्टिक सागर के निकट के देशों तक व्यापार का प्रचार-प्रसार था। भारत से इस्पात, मसाले, हाथी दाँत की कलात्मक वस्तुएँ और बहुमूल्य धातुएँ, अरब से सुगंधि, फारस से दरी, गलीचे, मिस्र से सन, रूई, अफ्रीका से शुतुरमुर्ग के पंख और स्वर्ण, स्पेन से अनाज, ब्रिटेन से टिन, यूनान के द्वीपों से संगमरमर तथा ताँबा और काकेशिया से खनिज पदार्थ, फिनीशिया से आभूषण, पारदर्शी शहीशा, बर्तन, सूती-रेशमी कपड़ा, सीरिया से शराब का व्यापार, ये उस समय के विश्व व्यापार के उदाहरण हैं। एक देश के व्यापारी अपने देश का सामान जिसकी दूसरे देश को जरूरत हो ले जाते थे तथा उस देश से वह सामान जिसकी अपने देश में जरूरत हो ले आते थे। यानी आयात एवं निर्यात का बेहतर संतुलन बनाए रखना ताकि किसी भी देश की आर्थिक स्थिति गड़बड़ाए नहीं। सभ्य समाज द्वारा अपनाए गए वैश्वीकरण को हम 'आदर्श वैश्वीकरण' कह सकते हैं।

उसकी तुलना में आधुनिक वैश्वीकरण असभ्यता पर आधारित है। अपने को सभ्य समाज का ठेकेदार कहलवाने वाले देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने पालतू संगठन विश्व व्यापार संगठन के जरिए पूरी दुनिया की पूंजी को हथियाने के लिए बर्बरता पर उतर आयी हैं। ये विशालकाय कंपनियाँ अपने हित साधने के लिए अपने धन-बल के जरिए किसी देश की सरकार गिराने व बनवाने के काम को बखूबी अंजाम देती है। नौकरशाही को पालतू बना कर रखना इन्हें आता है। खेती, खाद्य और स्वास्थ्य-मानव जाति की सभ्यता के आधार रहे हैं और आज भी हैं। इन कंपनियों की गिद्ध दृष्टि इन क्षेत्रों पर भी पड़ चुकी है; लोगों के पेट से रोटी और हाथों से रोजगार छिनता जा रहा है। पेट से भूखे तन से नंगे बेरोजगार किसानों-मजदूरों में

Scanned with OKEN Scanner

ही नहीं, पढ़े-लिखे नौजवानों और देशी व्यापारियों में भी असंतोष बढ़ता जा रहा है। देश के खेत खलिहानों की हरियाली, बदहाली में बदल चुकी है। देश का कोई कोना ऐसा नहीं बचा है, जिसमें फसल सड़ न रही हो। गेहूं, धान, सरसों, कपास, मूंगफली, नारियल, सोयाबीज, आलू, गन्ना, सभी फल व सब्जियों सहित फसलों का उठाने वाला नहीं मिल रहा है। साथ ही लघु व कुटीर उद्योग बंद होते जा रहे हैं।

आज पूरी दुनिया के सभ्य लोग अपनी सभ्यता और अस्तित्व को बचाए रखने के लिए चिंतामग्न हैं। गाँवों के बुर्जग किसानों और मजदूरों की आँखों से नींद विदा हो चुकी है। नौजवान हिंसा और आतंकवाद के साए में अपने भविष्य को खोज रहा है। भारत जैसा उच्च कोटि का सभ्य और सांस्कृतिक दृष्टि से अति संपन्न देश आज दरिद्रता के द्वार पर खड़ा है।

आज वैश्वीकरण के पक्ष और विपक्ष में जोरदार बहस छिड़ी है। कुछ लोगों का कहना है कि हम दुनिया से अलग-थलग होकर नहीं रह सकते। हमें दुनिया के और देशों से कदम से कदम मिलाकर चलना ही होगा। ऐसे लोगों का कहना है कि हमें प्रतिस्पर्धा में उतरना ही पड़ेगा। मैं भी मानता हूँ कि प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए। मैं ये भी मानता हूँ कि हमें अन्य देशों के साथ मिलकर चलना चाहिए। हम दुनिया से अलग टापू पर नहीं रह सकते। संसाधनों के बढ़ाने से पूरा विश्व सिमट कर रह गया। क्षणों में हम विश्व के किसी भी आदमी से बात कर सकते हैं। घंटों में विश्व के एक छोर से दूसरं छोर पर पहुंच सकते है। ऐसी स्थिति में वैश्वीकरण के पक्ष में बोलने वालों के तर्क में दम नजर आता है। लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ कि प्रतिस्पर्धा बराबरी वालों के बीच होती है या आपस में गैर बराबरी रखने वालों के बीच। एक तरफ यूरोप और अमरीका अपने किसानों को तीन सौ फीसदी सब्सिडी दे रहे

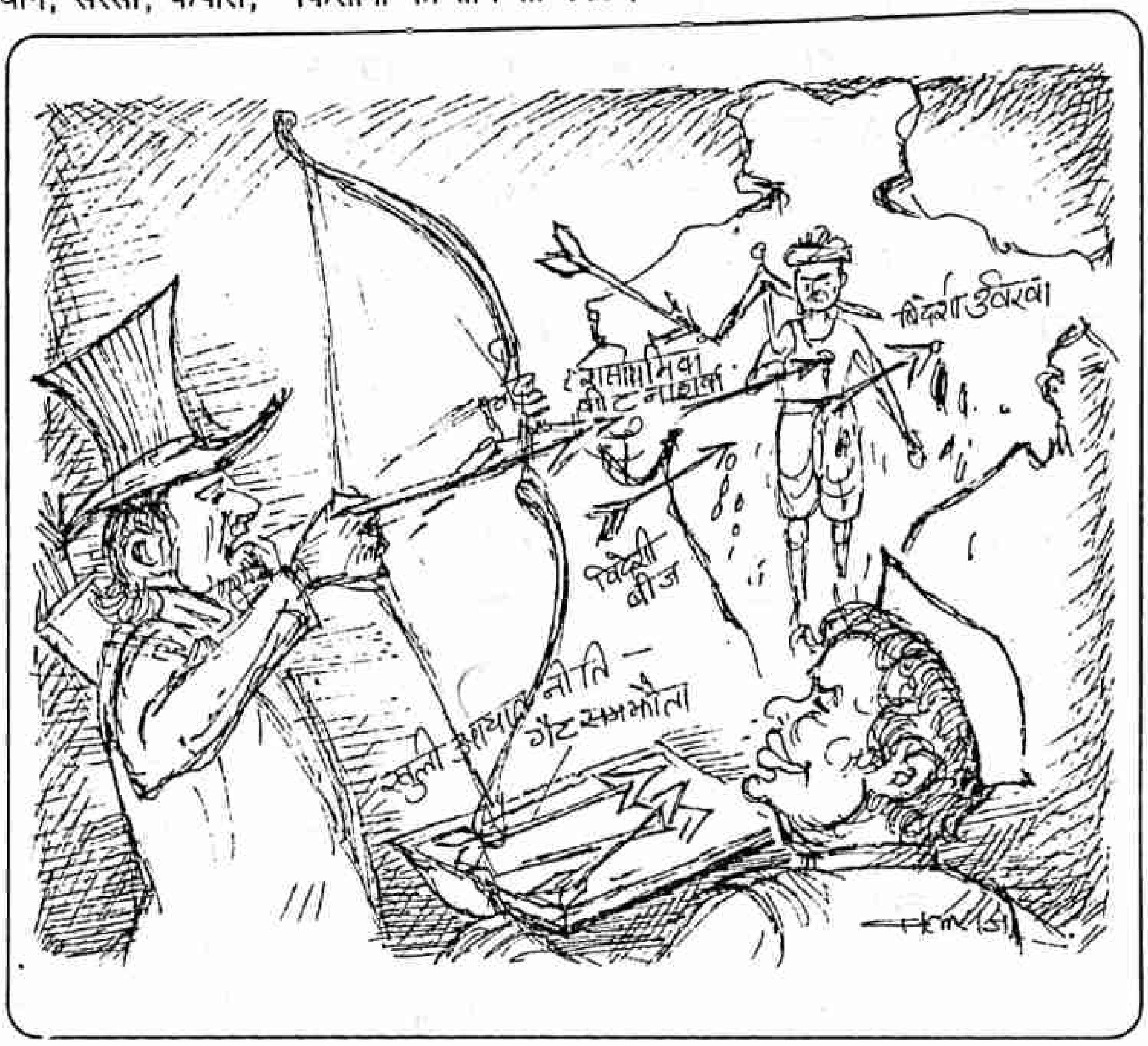

हैं, दूसरी ओर मात्र ढाई फीसदी सब्सिडी पाने वाले गरीब किसानों की सब्सिडी खत्म करने के लिए भी भारी दबाव बनाया जा रहा है। पेटेंट के नाम पर दूसरे देशों की जैव संपदा पर जबरदस्ती डाका डाला जा रहा है। बासमती, नीम, हल्दी सहित अनेक उदाहरण दुनिया के सामने हैं। मात्रात्मक प्रतिबंध हटवाना कौन से व्यापार की सभ्यता है।

आज वैश्वीकरण के पक्ष और विपक्ष में जोरदार बहस छिड़ी है। कुछ लोगों का कहना है कि हम दुनिया से अलग-थलग होकर नहीं रह सकते। हमें दुनिया के और देशों से कदम से कदम मिलाकर चलना ही होगा। ऐसे लोगों का कहना है कि हमें प्रतिस्पर्धा में उतरना ही पड़ेगा। मैं भी मानता हूँ कि प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए।

डम्पिंग करने की छूट क्या है? मेरे देश : जितने माल की आवश्यकता है मैं उतना ः क्यों न खरीदूं? अपने देश में जितने खाद्या की लागत है, उसका पाँच फीसदी बाहरी दे से क्यों लूं? पराजीनी खाद्य पदार्थों (जेनेटि इंजीयरिंग द्वारा तैयार खाद्यान्न) को हमारे दे में बेचकर हमारे लो के स्वास्थ्य के सा खिलवाड़ क्यों? कोव कोला अपना ही मा बेचता तो समझ आता है। लेवि धान-बल विज्ञापन-बल पर देश की थम्सअ लिम्का, माजा अ को भी पाया।

यानी ब मछली, छोटी मछ को खाती रहे – य है आज वैश्वीकरण। बहुराष्ट्रीय कंपनि परभक्षी बन चुकी है। लघु व कुटीर उद्य को खत्म कर अपना वर्चस्व कायम क जाना इनका उद्देश्य है। कैपिटल फ्लाइंग हथकंडा क्या है? किसी भी देश के आ और निर्यात के संतुलन को ध्वस्त क कौन-सी व्यापारिक सभ्यता है। सभ्य सम के सामने आज ऐसे अनेक प्रश्न मुंह ब खड़े हैं।

आज के वैश्वीकरण के पक्षधर ः बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने भौतिकवाद अंधे खेल में असभ्यता की सारी सीमाएं त चुकी है। इसलिए आज के वैश्वीकरण सफर सभ्यता से असभ्यता की राह पर चुका है। इसे रोकना होगा। नहीं तो हमारा आर्थिक पराधीनता के ऐसे दुश्चक्र में प जाएगा, जिससे बाहर आने से पहले ही बरबाद हो लेंगे। क्या कोई तैयार है इस चुन के लिए? या किसी के अवतार की प्रती करनी पड़ेगी?

Scanned with OKEN Scanner

मारुति उद्योग लिमिटेड

सम्मान बेचने की तैयारी

१९८०-९० में सुजुकी की भागीदारी बढ़कर निर्धारित अधिकतम सीमा ४० फीसदी हो गयी थी। लेकिन ९१ में नरसिंहराव सरकार ने उदारीकरण की शुरुआत की तो उसका लाभ उठाते हुए सुजुकी मोटर कंपनी ने अपनी भागीदारी ५० फीसदी कर ली. . .कहने को तो बराबर के हिस्सेदार हुए पर असल में सुजुकी द्वारा ५० प्रतिशत अंशभाग पाने के बाद उसने मारुति पर एकाधिकार की चाल चलनी शुरु कर दी। उसकी पहली चाल थी ९८-९९ में मारुति के महाप्रबंधक भास्करुडु को उनके पद से हटाकर उसकी जगह अपने पसंदीदे जगदीश घत्तर को वहाँ लाना।

■ स्वदेशी पत्रिका संवाद

१९८२ में भारत सरकार ने जापानी कंपनी सुजुकी मोटर कंपनी के साथ मिलकर एक 'जनता यात्रीकार' के निर्माण की शुरुआत की। सरकार का ७४ प्रतिशत शेयर था और सुजुकी कारपोरेशन का शेयर २६ प्रतिशत था। जिसे चरणबद्ध तरीके से बढ़ाते हुए ४० फीसदी तक ले जाने का प्रावधान था। मारुति उद्योग लिमिटेड जिन उद्देश्यों को लेकर स्थापित की गयी थी, उसको बखूबी उसे पूरा किया। १९८४-८५ में २२३७२ कारों का निर्माण करने वाली मारुति १९९९-२००० में ४०,७००० कारों के उत्पादन तक जा पहुँची। और अभी कुछ महीने पहले उसने अपनी उत्पादन क्षमता ५ लाख कारों के प्रतिवर्ष उत्पादन तक पहुँचा दिया है।

भारत में कारों का बाजार तैयार करने वाली मारुति कंपनी खुद बाजार में बिकने आ गयी है। ऐसा अचानक नहीं हो गया है। एक ओर मारुति के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ बाजार में उसकी हिस्सेदारी बढ़ती गयी तो दूसरी ओर सुजुकी मोटर कंपनी की मारुति पर पकड़ भी मजबूत होती गयी। १९८०-९० में सुजुकी की भागीदारी बढ़कर निर्धारित अधिकतम सीमा ४० फीसदी हो गयी थी। लेकिन ९१ में नरसिंहराव सरकार ने उदारीकरण की शुरुआत की तो उसका लाभ उठाते हुए सुजुकी मोटर कंपनी ने अपनी भागीदारी ५० फीसदी कर ली। अब मारुति और सुजुकी बराबर के हिस्सेदार बन गए। कहने को तो बराबर के हिस्सेदार हुए पर असल में सुजुकी द्वारा ५० प्रतिशत अंशभाग पाने के बाद उसने मारुति पर एकाधिकार की चाल चलनी शुरु कर दी। उसकी पहली चाल थी ९८-९९ में मारुति के महाप्रबंधक भास्करुडु को उनके पद से हटाकर उसकी जगह अपने पसंदीदे जगदीश घत्तर को वहां लाना। हालाँकि उसने ऐसा कहा नहीं था। उसने तो महाप्रबंधक पद सीधे तौर पर मांगा था। लेकिन उसे पता था ऐसा संभव नहीं है, हाँ इस बहाने वह किसी चहेते भारतीय को उस पद पर तक ला सकती है। और वही हुआ।

जगदीश घत्तर मारुति उद्योग लिमिटेड के नए महाप्रबंध बन गए। वे क्या कुछ कर सकते थे, उन्होंने किया जिसका परिणाम है कि दो साल के भीतर ही मारुति उद्योग विवाद में पड़ गयी। कंपनी द्वारा १९८८ में प्रबंधन और कर्मचारी यूनियन में यह समझौता किया गया था कि कंपनी उत्पादन पर प्रोत्साहन योजना लागू करेगी। १ अप्रैल १९९९ में उसकी समीक्षा होनी थी। लेकिन अगस्त तक प्रबंधन द्वारा उसकी कोई चर्चा न होने के बाद कर्मचारी यूनियन ने १८ अगस्त २००० को प्रबंधन को एक नोटिस दिया कि अगर प्रबंधन तंत्र इस बारे में विचार नहीं करता तो कर्मचारी भूख हड़ताल पर चले जाएँगे। मानों प्रबंधन तंत्र को इसी दिन का इंतजार था। यहीं से विवाद शुरु हो गए। प्रबंधन तंत्र ने हीलाहवाली शुरु कर दी। प्रबंधन ने कहा कि कर्मचारियों द्वारा ज्यादा प्रोत्साहन राशि माँगना उचित नहीं है। क्योंकि इसके बाद कंपनी के औसत कर्मचारी का वेतन बढ़कर ४२ हजार हो जाएगा। यह सरासर गलत था। असल में यूनियन ने इतनी बड़ी माँग ही नहीं की थी। यूनियन के उपाध्यक्ष एम. एस. तड़ागी कहते हैं कि "कंपनी प्रबंधन औसत १५०० का भी इसेंटिव देने को तैयार नहीं है। यह कहना कि हमारी मांग ४२ हजार है, सरासर गलत है।" लेकिन प्रबंधन तंत्र ने कोई बात नहीं सुनी। ९ सितंबर २००० को प्रबंधन ने कर्मचारी यूनियन के सामने तानाशाही प्रवृत्ति वाली शर्त रख दी। प्रबंधन ने घोषणा कर दी कि वही कर्मचारी कंपनी के अंदर प्रवेश कर सकता है जो 'गुड कंडक्ट अंडरटेकिंग' पर हस्ताक्षर कर देगा। यह पूरी तरह से गैर मानवीय घोषणा थी। श्रम कानूनों का भी उल्लंघन था। भारतीय नागरिक को मिलने अधिकारों का भी मजाक उड़ाया गया है। इसमें कर्मचारी से शपथ ली गयी थी कि वह धीमी गति से काम करने, प्रमाणित स्थाई आदेशों का उल्लंघन करने, हड़ताल करने पर इसे कदाचार मान लिया जाएगा और प्रबंधन तंत्र को यह अधिकार होगा कि वह उक्त कर्मचारी के खिलाफ कानूनी कार्रवाई कर सके।

इस तुगलकी कार्रवाई के पीछे गहरी चाल थी। जिसकी सूत्रधार सुजुकी है। जैसे ही कर्मचारियों को काम पर आने से रोका

Scanned with OKEN Scanner

गया, कंपनी में उत्पादन बंद हो गया। पहले से ही यह शोर मचाया जा रहा था कि मारुति की बाजार में हिस्सेदारी घटी है, लेकिन कहीं यह नहीं कहा गया कि मारुति में कारों का उत्पादन बढ़ा है, क्योंकि भारत में कारों का बाजार बढ़ा है। मारुति में उठा यह विवाद खत्म नहीं हुआ था कि सरकार ने मारुति में विनिवेश की घोषणा कर दी। सरकार ने पहले तो कहा कि वह मारुति में चल रहे विवाद को निपटाने के लिए प्रबंधन से बात करेगी लेकिन दूसरे ही दिन उसने घोषणा कर दी कि उसका इस विवाद में पड़ने का कोई इरादा नहीं है।

उधर दूसरी ओर विनिवेश मंत्रालय ने मारुति में विनिवेश की कार्रवाही शुरु कर दी। यह सब जानते हैं कि मारुति उद्योग लिमिटेड के विकास में देश का पैसा लगा हुआ है। सरकारी पैसे पर पली-बढ़ी यह कंपनी आज भारत की सबसे बड़ी कार उत्पादक कंपनी है तो क्या सुजुकी मोटर को यूं ही मारुति को हड़प लेगी? अब अगर सरकार मारुति में सुजुकी का शेयर न भी बढ़ाए तो विनिवेश के बाद स्वयं ही मारुति पर सुजुकी का एकाधिकार हो जाएगा।

लेकिन कुछ बातों पर विचार करना जरूरी है। कहा गया कि मारुति का लाभांश घट रहा है। १९९७-९८ में मारुति का लाभांश सकल टर्नओवर का ११.९१ प्रतिशत था जो १९९९-२००० में घटकर ४.१३ प्रतिशत रह गया। यानी दो वर्षो के अंदर कंपनी का लाभांश ६.५ प्रतिशत कम हो गया। इसका कारण था बाहर से कच्चे माल का आयात १९९७ में कुल कच्चे माल का २६.७७ प्रतिशत आयात किया गया था जो १९९९-२००० में बढ़कर ३१.९२ प्रतिशत हो गया। इसी तरह सुजुकी को भुगतान किए जाने वाले रॉयल्टी में भी आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि दर्ज की गयी। १९९३-९४ में सुजुकी को कुल टर्नओवर का ०.२८ प्रतिशत रॉयल्टी के रूप में भुगतान किया गया। जो १९९९-२००० में बढ़कर १.२८ प्रतिशत हो गया। इसका अर्थ १९९३-९४ में सुजुकी को रॉयल्टी के रूप में ७.६४ करोड़ रुपए मिले थे, जो १९९९-२००० में बढ़कर ११२.७०

करोड़ हो गया। मारुति उद्योग में रॉयल्टी भुगतान, तकनीकि सहयोग, लाभांश में आधा हिस्सा के रूप में सुजुकी बड़ी रकम हर साल हजम करता है। इसका परिणाम यह हुआ कि मारुति की आयात पर निर्भरता बढ़ती गयी। कलपुर्जो का आयात, कच्चा माल, स्पेयर पार्ट आदि के आयात पर पिछले साल मारुति ने २३१६ करोड़ रुपए खर्च किए जो कि भारत में हुए कुल आयात का १ प्रतिशत था। भारत सरकार ने इस ओर ध्यान क्यों नहीं किया? सरकार को चाहिए कि वह उन कारणों का पता लगाए जिससे मारुति द्वारा विदेशों से हो रहे आयात को कम किया जा सके। सरकार को यह भी विचार करना चाहिए कि आज हम सुजुकी को रॉयल्टी के रूप में कुल टर्नओवर का २ प्रतिशत दे रही है। जबकि

यूनियन के उपाध्यक्ष एम.एस. तड़ागी कहते हैं कि ''कंपनी प्रबंधन औसत १५०० का भी इंसेंटिव देने को तैयार नहीं है। यह कहना कि हमारी मांग ४२ हजार है, सरासर गलत है।''. . .९ सितंबर २००० को प्रबंधन ने कर्मचारी यूनियन के सामने तानाशाही प्रवृत्ति वाली शर्त रख दी। प्रबंधन ने घोषणा कर दी कि वही कर्मचारी कंपनी के अंदर प्रवेश कर सकता है जो 'गुड कंडक्ट अंडरटेकिंग' पर हस्ताक्षर कर देगा।

अनुसंधान पर मात्र ०.३ प्रतिशत खर्च कर है। पांच लाख कारों की उत्पादन क्षमता व कंपनी का अनुसंधान पर इतना कम करना इस बात की ओर संकेत करता है कहीं न कहीं गड़बड़ है। करार के १७ बाद भी तकनीकि रूप से मारुति सुजुकी निर्भर है। जिसका परिणाम हुआ है कि अ गियर बॉक्स तकनीकि के लिए म सुजुकी मोटर कंपनी ने ५० प्रतिशत हथियाने के बाद वह तकनीकि नहीं दी अब जब इसकी बात होती है तो कहती कि उसका शेयर बढ़ाया जाने पर ही गियर बॉक्स तकनीकि इस संयुक्त उद्यम हस्तांतरित करेगी। सरकार स्तर पर दि गए उदासीनता और गलत निर्णयों का परिणाम है कि १०३ करोड़ रुपए का नि करके सुजुकी आज १०,००० करोड़ की मारुति में आधे की हिस्सेदार १९९७-९८ के बाद विभिन्न मदों से सु अपने निवेश के १०० प्रतिशत से भी ज्य लाभ देश से बाहर भेज रही है। अब भी है कि सरकार विदेशी निवेश को बढ़ावा की बजाय स्वदेशी निवेश और अनुसंधान बढ़ावा दे। नहीं तो आज मारुति के कर्म सड़क पर है, कल पूरा देश सड़क पर हो विदेशी निवेश, विदेशी प्रवेश के समर्थकों समझना चाहिए तब इस ज्वालामुखी के ल से वे भी नहीं बच पाएंगे। *संजय तिव*

स्वदेशी जागरण मंच के पंजाब प्रांत परिषद् की बैठक संपन्न हुई

स्वदेशी जागरण मंच, पंजाब प्रांत के प्रांतीय परिषद् की बैठक के समापन अवसर पर केंद्रीय संचालन समिति के सदस्य एवं उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय संयोजक श्री वीरेंद्र सिंह ने फिरोजपुर जिले में अग्रवाल धर्मशाला में आयोजित सार्वजनिक सभा में विचार व्यक्त किए।

उन्होंने कहा कि १९९१ से आर्थिक उदारीकरण की व्यवस्था लागू करने से लेकर आज तक की सभी सरकारों ने नीतिगत रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि व्यवस्था के हित का ख्याल नहीं किया जिसके परिणाम स्वरूप आज किसान हताश होकर आत्महत्या करने पर उतारू हो रहा है। असलियत यह है कि किसान सबसे अधिक जी तोड़ मेहनत करता है लेकिन उसके उपज का लाभकारी मूल्य नहीं मिलता जिसके कारण खेती से वह दूर होता जा रहा है। जबकि कटु सतय है कि उद्योग को वन माल का लाभकारी मूल्य उद्योग को मिलता है। इसलिए किसान को भी लाभकारी मूल्य मिलना चाहिए। तभी किसान सुख समृद्धिशाली बन सकेगा।

श्री वीरेंद्र सिंह जी ने उदारीकरण के दस वर्षों की समीक्षा की बात करते हुए कहा कि सरकार को असलियत की जानकारी गाँवों में रहने वाला किसान और उसकी दुर्दशा का गहन अध्ययन करना चाहिए। तभी किसान का भला हो सकता है। साथ ही हाई ब्रीड्स, पेस्टी साईडस के प्रयोग से किसान तबाह हो रहा है उसे रोकना चाहिए।

किसानों ने ही इस देश की परंपरा को जीवित रखा है जिसकी आज तक सभी सरकारों ने उपेक्षा किया है। अतः स्वदेशी जागरण मंच अब किसानों की सुरक्षा के लिए जन जागरण अभियान चलाएगा।

अगर किसान नहीं है तो उत्पादन नहीं, तब उत्पादन नहीं, तो बाजार नहीं सब बाजार नहीं रहेगा तो देश की सारी व्यवस्थाएं टूट जाएगी। अतः किसान सभी व्यवस्थाओं का आधार है जिसे मजबूत करना चाहिए और इसी संकल्प के लिए आप के बीच आया हूँ।

उन्होंने कहा कि करखनीय माल और खरहनिया माल दोनों को बराबर देखा जाना चाहिए किसी एक की उपेक्षा हुई कि देश की व्यवस्था चौपट हो जाएगी अतः किसान की कृषि, खेती को उद्योग का दर्जा देना। यह मतलब नहीं है बल्कि उद्योग की तरह उसे भी समृद्धि के लिए सुविधाएं दी जाए तो किसान अपनी दुदर्शा से बच सकता है।

पंजाब के किसानों की दैवीय स्थिति की ताजा रिपोर्ट की चर्चा करते हुए काशी प्रांत के संगठन मंत्री श्री आदित्य ने बताया कि पंजाब पंचनद की विस्तृत भूमि आज संकट में है। उन्होंने कहा, मुझे एक किसान से जानकारी प्राप्त हुई कि उसने कपास की खेती के लिए ऋण पर ट्रैक्टर लिया। उसने कपास की खेती की। कपास के पेड़ बड़े हुए। आशा की किरण जागी कि लाभ मिलेगा। उसने एक एकड़ में तीन चार बार कीटनाशक का उपयोग किया जिसमें कम से कम चार-पाँच हजार रुपए का खर्च और बढ़ा, किसान न देखा कि पेस्टी साईड के प्रभाव से कपास की जड़ों में कीड़े लगने लगे और कपास के पेड़ का रंग ही बदल गया। वह कपास की फसल से निराश होने लगा और धीरे-धीरे कपास की खेती चौपट होने लगी। यह दुर्घटना कई किसानों के साथ हुई जिन्होंने कपास की खेती की थी और इस खेती के लिए ऋण लिए थे। ऋण न चुकाने पर कई किसानों को ट्रैक्टर का खरीद मूल्य ४.२५ लाख रुपए से कम ३ लाख रुपए में अपने ट्रैक्टर बेचने पर मजबूर होना पड़ा। कई ऋण ग्रस्त किसानों ने आत्महत्या की।

१९९१ से आर्थिक उदारीकरण की व्यवस्था लागू करने से लेकर आज तक की सभी सरकारों ने नीतिगत रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि व्यवस्था के हित का ख्याल नहीं किया जिसके परिणाम स्वरूप आज किसान हताश होकर आत्महत्या करने पर उतारू हो रहा है।

संगरूर भटिण्डा, भा.सा. मुक्तसा आदि गाँवों में किसानों ने आत्महत्या की है। धान की खेती से पैदावार इस बार अस्सी हुई है। फिरोजपुर जिले के आसपास खेतों में ही खुले आसमान के नीचे एफ.सी.आई. ने गोदाम अस्थायी बनाकर हजारों टन धान रखा है। धान की खरीद एफ.सी.आई. स्वयं किसानों ने न कर बिचौलियों यानी व्यापारियों के द्वारा खरीदा जाता है। जिससे बाद में एफ.सी.आई. खरीदती है और जिससे किसान को अपने ऊपज का लाभकारी मूल्य नहीं मिल पाता है और किसान जिसके कारण किसान अब धीरे-धीरे खेती से दूर होता जा रहा है।

सरकार ने धान क्रय के लिए विशेष कार्य योजना तैयार किया है। उसका भी लाभ किसान को नहीं मिल रहा है। धान क्रय केंद्र के पहले ही नेहा, अधिकारी मिलकर बिचौलिये से धान खरीद रहे हैं। इस कारण किसान सस्ते में ही धान बेच रहा है।

आलू की खेती भी इसी दृष्टि से बर्वाद हो रहा है। आलू के लिए किसानों ने कर्ज लिए और खेती आलू की अच्छी पैदावार हुई है लेकिन आलू रखने की व्यवस्था ठीक न होने से आले का भाव काफी गिर चुका हैं। आज किसान अपना आलू एक रुपए

Scanned with OKEN Scanner

किलो के भाव से बाजार में बेचने को मजबूर हो रहा है। जबकि आलू उत्पादन में ज्यादा धन लाना पड़ा है। अब दशा यह है कि किसान आलू की खेती से भी दूर हो रहा है।

पंजाब के अंदर एक समस्या और खड़ी हो रही है कि पंजाब नदियों के कारण हराभरा रहता था जल की कमी भी होने लगी है साथ ही कीटनाशक के प्रयोग से पीने वाला पानी भी प्रदूषित हो रहा है जिसके कारण गाय-भैंस और यह तक कि महिलाओं को भी तमाम प्रकार के लोग पैदा हो रहे हैं। क्योंकि उनके दूध के अंदर जहरीले कीटनाशकों के कारण कई प्रकार के दुष्प्रभाव उत्पन्न हो रहे हैं। जिस्से पंजाब के लोग किडनी के रोगी हो रहे है। अभी रोगियों की संख्या कम है। लेकिन यही खेती का प्रचलन रहा और पर्यावरणीय समस्या बनी रही तो आगामी २० वर्षों में पंजाब के रोग ग्रस्त होने से कोई बचा नहीं सकता है।

इस प्रकार पंजाब के किसानों की व्यावहारिक स्थिति का अंदाजा सरकार के प्रतिनिधि एवं अधिकारी नहीं लगा सकते जो वातनुकूलित कमरों में बैठकर या लोकसभा में कानून बनाकर अपना दायित्व पूरा हुआ समझ रहे हैं।

पिछले ५० वर्षों से हरित क्रांति सहित तमाम प्रकार के कानून बनाकर किसान को मजबूत करने के नाम पर धोखा ही किया है। पंजाब के किसान भी नई कृषि नीति, 'कारपोरेट एग्रीकल्चर' आदि कानूनों से बड़े सशंक्ति नजर आ रहे है।

पंजाब के किसान अपने देश के कानून व्यवस्था के अलावा पड़ोसी देश पाकिस्तान से भी समस्या में फँस रहे हैं। क्योंकि पाकिस्तान से भी काफी मात्रा में कपास के बीज आए, जिससे किसान को कपास की खेती नष्ट हुई।

यह भी पता चला है कि पंजाब एग्रो विभाग ने विदेशी कंपनी को फार्म विकसित करने के लिए ठेका दे रखे हैं। किसान इससे भी भयभीत है। यह हालत रही तो किसान अपने स्वतंत्र भारत में एक बार फिर परतंत्र भारत के किसान आंदोलन को दुहराने पर विवश होंगे। ■

लघु उद्योगों पर जन आयोग ने हैदराबाद में सुनवाई की

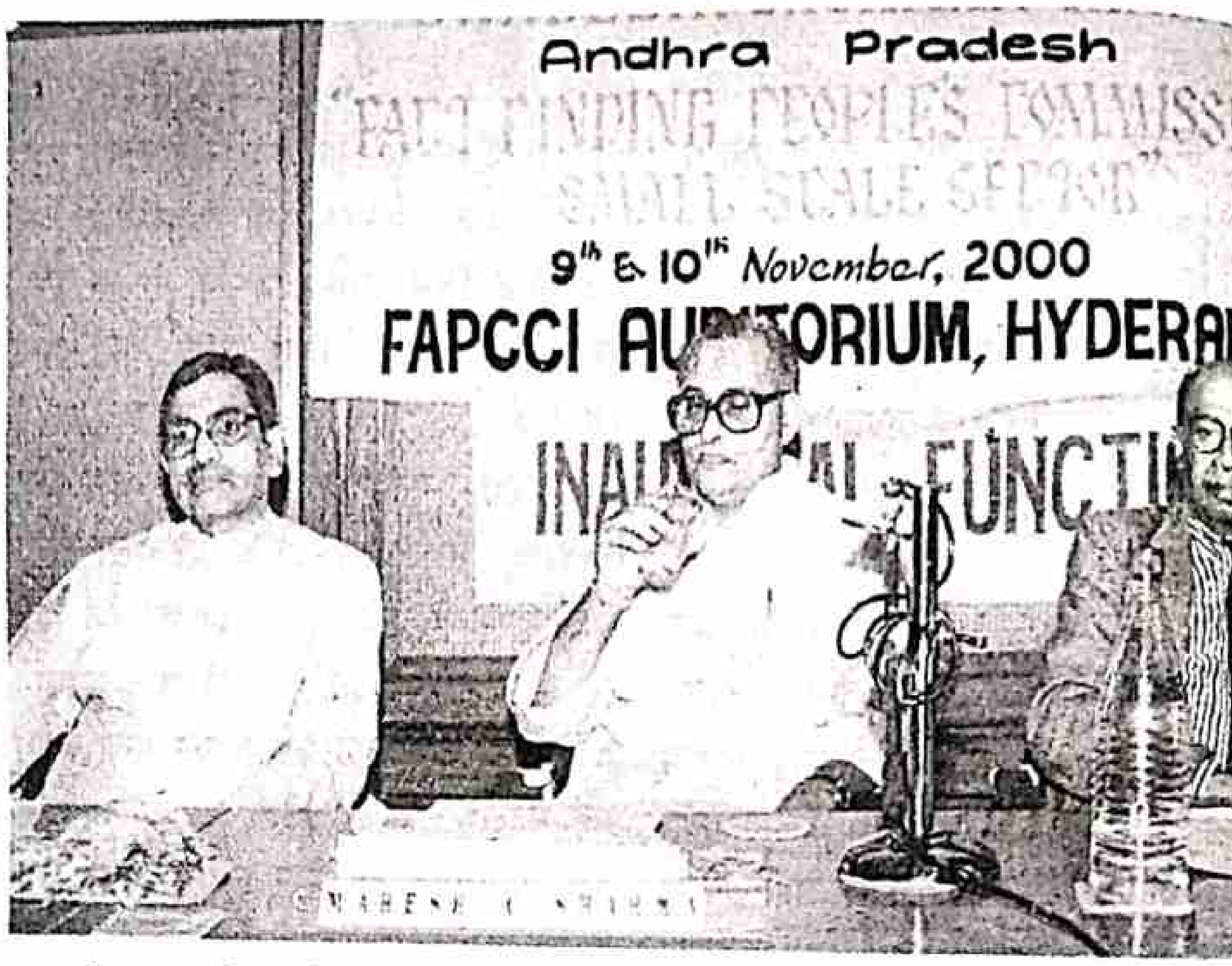

फैक्ट फाइंडिंग कमेटी द्वारा हैदराबाद में सुनवाई की गयी। इस अवसर पर बाएँ से श्री महेश शर्मा, श्री महेश चंद्र शर्मा और श्री इब्राहीम वर्गीज।

लघु उद्योग क्षेत्र में सरकार की नीतियों का क्या असर पड़ रहा है और मात्रात्मक प्रतिबंध हटने के बाद की स्थिति में लघु उद्योग कहाँ तक टिक पाएंगे इस उद्देश्य से स्वदेशी जागरण मंच ने एक जन आयोग का गठन किया है। यह आयोग देशभर में सुनवाई कर रहा है। इसी क्रम में ९ और १० नवंबर को हैदराबाद में सुनवाई की गयी।

रेड हिल्स में एफएपीसीआई ऑडिटोरियम में आयोजित की गयी सुनवाई का उद्घाटन खादी ग्रामोद्योग आयोग के अध्यक्ष डॉ. महेश शर्मा ने किया। इस अवसर पर डॉ. महेश चन्द्र शर्मा (राज्य सभा सांसद), श्री इब्राहिम वर्गीज (निदेशक, भारतीय विपणन विकास केंद्र), प्रमुख रूप से उपस्थित थे। इसके अलावा बड़े स्तर पर लघु उद्यमियों सहित विभिन्न क्षेत्रों से संबद्ध लोग उपस्थित थे।

इस अवसर पर बोलते हुए खादी ग्रामोद्योग के अध्यक्ष श्री महेश शर्मा ने कहा कि देश के उत्पादन में लघु उद्योगों का महत्वपूर्ण योगदान है। जहां तक गुणवत्ता का सवाल है तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा कुल ८० फीसदी माल लघु उद्यमियों से तैयार करवाया जाता है और उन पर अपना ब्रांड नाम लगाकर बेचते हैं।

श्री वर्गीज ने कहा कि लघु उद्योग पर जन आयोग के द्वारा स्वदेशी जागरण मंच देशभर में सुनवाई कर रहा है। इसके बाद लघु उद्योग के विशेषज्ञों से राय लेगा। इसके बाद सभी प्राप्त सूचनाओं, प्रमाणों को केंद्र सरकार को सौंपेगा। इसके आधार पर जन आयोग केंद्र सरकार को अपनी सिफारिशें भी देगा।

ज्ञात हो कि आंध्र प्रदेश में फेडरेशन ऑफ आंध्र प्रदेश चैंबर ऑफ कामर्स एण्ड इंडस्ट्री एसोसिएशन के अलावा ४३ लघु उद्योग संगठनों को संपर्क कर उनसे उनकी कठिनाइयों के बारे में जांच पड़ताल की है। ■

Scanned with OKEN Scanner

विश्व सुंदरी की खोज

पश्चिम सदैव अच्छा होता है, भारत में जो है वह बुरा है, ऐसा मानने वाला वर्ग भारत की अपनी पहचान और अस्मिता दोनों को याद नहीं रखना चाहता। फिर भी वैश्विक स्तर पर ये इंडियन अपने इंडिया का गुणगान करना चाहते हैं। अपनी पहचान बनाना चाहते हैं। यह दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है कि पहचान विहीन लोग पहचान बनाने को निकले हैं।

रीता फारिया १९६६ में जब उसी लंदन शहर में विश्व सुंदरी घोषित हुई थी तब शायद उतने लोग उनको नहीं जानते हों, जितना लोग आज उन्हें जानने लगे हैं। अपनी मां के कपड़ों और पुराने सैण्डल के भरोसे सौंदर्य का पुरस्कार भारत लाने वाली वह बाला आजकल भारत के सौंदर्य इतिहास का अंग बन चुकी है। अतीत की सुंदर याद और भविष्य के लिए प्रेरणा बन चुकी रीता फारिया भी उस समारोह में उपस्थित थी जिसमें प्रियंका चोपड़ा को वर्ष २००० का मिस वर्ल्ड घोषित किया गया।

समारोह में अंदर प्रियंका चोपड़ा सौंदर्य की नयी मलिका घोषित हो रही थी और सारी दुनिया इस क्षण को निहार रही थी लेकिन ठीक उसी समय आयोजन हाल के बाहर भी एक प्रदर्शन चल रहा था जिसमें लंदन की कुछ महिलाएं अपने अधिकारों के संरक्षण की दुहाई देते हुए इस प्रतियोगिता को बंद कराने की मांग कर रही थी।

यह तो आश्चर्यजनक था। सौंदर्य प्रतियोगिताएं नारी स्वतंत्रता का प्रतीक हैं और यह स्वतंत्रता समृद्ध लंदन की देन है। फिर यह कैसा संयोग है कि जब सूदूर भारत की एक बाला विश्व सौन्दर्य के शीर्ष अलंकरण को धारण कर रही थी तो लंदन की कुछ महिलाएं अपने अधिकारों की मांग कर रही हैं।

क्या लंदन में (पश्चिम समझें) महिलाओं की स्वतंत्रता, उनके अधिकार खतरे में हैं। शायद है। शायद लंदन में एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया है जो इस चमक-दमक के खोखलेपन को जान गया है। उसे पता चल गया है कि नारी स्वतंत्रता शरीर प्रदर्शन भर नहीं है। नारी स्वतंत्रता उपभोग तक सिमटना भर भी नहीं है। नारी स्वतंत्रता सौंदर्य अभिव्यक्ति के अवसर मिल जाने पर पूरी नहीं होती। जिस तेजी से पश्चिम स्खलित हो रहा है उससे उसके अस्तित्व को संकट आ सकता है। बाल विवाह को घृणित कर्म समझने वाला बुद्धिमान पश्चिमी समाज अब परेशान हो चला है क्योंकि अब ८ से १० वर्ष की लड़कियां खुद को युवा महसूस करने लगी हैं। (एक रिपोर्ट पर आधारित) अब उसके विकास के तथाकथित रास्ते बंद होते से दिख रहे हैं। समाज किस रास्ते चले इसकी खोज शुरु हो चुकी है। पश्चिम (यूरोप) के चिंतकों ने १७वीं सदी में जिस वैश्विक अवधारणा और आधुनिकता की नींव डाली थी उस पर बना मकान दरकने लगा है। इसलिए लंदन में सौंदर्य प्रतियोगिता स्थल के बाहर हो रहे विरोध नए मार्ग की ओर संकेत कर रहे हैं। पुरुष अस्तित्व की रचयिता नारी के प्रति पश्चिम के दृष्टिकोण में परिवर्तन अवश्यंभावी है लेकिन दुर्भाग्य देखिए ठीक उसी समय में भारत उल्टी दिशा की ओर चल पड़ा है।

पश्चिम सदैव अच्छा होता है, भारत में जो है वह बुरा है, ऐसा मानने वाला वर्ग भारत की अपनी पहचान और अस्मिता दोनों को याद नहीं रखना चाहता। फिर भी वैश्विक स्तर पर ये इंडियन अपने इंडिया का गुणगान करना चाहते हैं। अपनी पहचान बनाना चाहते हैं। यह दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है कि पहचान विहीन लोग पहचान बनाने को निकले हैं।

और इस वर्ग को बढ़ावा दे रही हैं बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अच्छी तरह पता है कि भारत में ३० करोड़ का बड़ा मध्यम वर्ग है। यह मध्यम वर्ग अमरीका की कुल आबादी से भी ज्यादा है। इसलिए यहां उन्हें व्यापार की व्यापक संभावनाए दिखती है। भारत में सौंदर्य प्रसाधनों का संगठित बाजार जिन पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कब्जा है वह ४०० करोड़ के आसपास है। यह बाजार १५ प्रतिशत सालाना की दर से बढ़ रहा है। यह बाजार जितनी तेजी से बढ़ेगा उतनी ज्यादा मात्रा में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मुनाफा भी बढ़ेगा। घातक रसायनों के प्रयोग से बनने वाले ये कास्मेटिक उत्पादन सुंदरता तो क्या लाएंगे अपने साथ बदसूरती का खजाना लेकर चलते हैं। यही कारण है कि सौंदर्य प्रसाधनों के उपयोग के बाद शरीर पर पड़े नाकरात्मक प्रभावों से निबटने के लिए भी उत्पादों की बड़ी शृंखला है। फिर उसके बाद आता है 'हर्बल प्रोडक्ट'। एक फैशन की तरह अब हर्बल उत्पादों की बाढ़ आ गयी है। हर कंपनी अब हर्बल उत्पादों को बनाने और बेंचने पर जोर दे रही है। हल्दी, चंदन, खीरा, केसर जैसी जड़ी-बूटियाँ सौंदर्य निखारने के प्रमुख साधन रहे हैं। यही कारण है कि हर कंपनी इन जड़ी-बूटियों पर आधारित उत्पाद बनाने लगे हैं। कोई भी भला आदमी पूछ सकता है कि यही सब छोड़कर तो रासायनिक उत्पादों का प्रयोग शुरू किया था, फिर से वापस वहीं आ गए, तो फर्क क्या पड़ा? फर्क पड़ा है। अब उन उत्पादों से किसी न किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी का लाभ जुड़ गया है। यही आधुनिकता है। यही तरक्की है। यही उस इंडियन समाज की प्रगति है जो विशुद्ध पाखण्ड है।

मैं आंतरिक सौन्दर्य की बात नहीं करूंगा। आंतरिक सौंदर्य केवल भारतीय नारी में है ऐसा नहीं है। १७-१८ सौ वर्षों तक पश्चिम ने स्त्री

को मनुष्य और पशु के बीच का प्राणी माना इसलिए उनमें आंतरिक सौंदर्य दिखता हैं इसकी अपेक्षा किसी को नहीं थी। यही कारण है कि वहां महिलाओं ने अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ी। निरंतर पुरुष समाज से अपने पहचान की मांग करती रही। उसे वह मिला लेकिन बहुत विकृत स्वरूप में। पश्चिम की नारी जिस स्वरूप की मांग कर रही थी उसे आज तक प्राप्त नहीं हो सका है। वह स्वरूप भारत को स्वभाव से ही प्राप्त है। कहानी, कविताओं, लोकोक्तियों वेदों उपनिषदों हर जगह नारी को शक्ति का रूप दिया गया और शक्ति की उपासना की गयी। लेकिन पश्चिम में पुरुष प्रधान समाज ने स्वभाव से नारी को पूरक नहीं उपभोग की वस्तु माना है। एक ऐसी वस्तु जो पुरुष की आवश्यकताओं को पूरा करती है। इसकी प्रतिक्रिया हुई सत्रहवीं सदी के बाद। मशीनों ने पश्चिम की जीवन शैली को जैसे जैसे बदला महिलाओं की आवश्यकता श्रम के रूप में बढ़ती गयी। यही कारण है कि वहां महिलाएं पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर आगे निकलने लगी। ऐसे में न तो परिवार बचा और न ही समाज बचा तो सिर्फ कंधे से कंधा मिलाने को उद्यत प्राणियों का एक समूह।

भारत में भी यह सब ही ऐसे प्रयास वैश्वीकरण के बाद बढ़े है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम अब भी अपनी अमूल्य संपदा परिवार पद्धति, समाज जीवन का स्वभाव, उसको दुनिया को देने की बजाय प्राणियों के समूह बनने को उद्यत हैं। यही भारतीय समा[ज] पर वैश्वीकरण का नाकारात्मक पहलू [है] जिससे बचना होगा। अगर बचे तो आज दुनि[या] किसी एक युक्तामुखी या प्रियंका चोपड़ा [को] सर आँखों पर उठा रही है कल पूरे भारत [को] अपना आदर्श मानेगी। क्योंकि वह भारत [ही] है। जहां नारी की स्वतंत्रता का पूरा मान र[खा] गया है। अगर ऐसा न होता तो स्त्री विवाह [में] स्वयंवर प्रथा का उल्लेख न मिलता। तथाकथि[त] आधुनिक इंडियन अगर समझ सकते हैं तो इ[स] तथ्य को समझ लें और स्वतंत्रता तथा स्वच्छ[न्दता] में भेद करना सीख लें। क्योंकि वह जि[से] स्वतंत्रता कह रहे हैं, असल में वह स्वतंत्र[ता] नहीं स्वच्छन्दता है।

संजय तिवा[री]

आदमी सूचनाएँ पहन रहा है!

■ अनुपम मिश्र

इधर शब्दों के भाव ऊँचे हैं। भारत के खुले बाजार में तरह-तरह के ब्रांड टकरा रहे हैं। इधर नोकिया है और उधर एस्सार है। बीच में ऊषा है, दायीं ओर कोई और होगा। लम्बी बिलें आ रही हैं। भारतीय बातें कर रहे हैं। बातों के अलावा अब करना ही क्या है? वातावरण में शब्द भर गया है। शब्दों की शाश्वत महत्ता वापस लौट आई है। भारतीय बातों में एक करोड़ और पैंतालीस करोड़ की बातें करने लगे हैं। भारतीयों का जीवन स्तर ऊपर उठ गया है। बड़े घटिया दिन थे वे भी। अब हम विकसित देश हैं। अमेरिका हमारा दोस्त है, रूस हमारा सहयात्री है। हम विकसित हो रहे हैं। विकास सहिष्णुता सिखाता है। हम सहिष्णु हो रहे हैं। सहिष्णुता संवाद पैदा करती है। हम संवाद कर रहे हैं। हमारे पास परस्पर संवाद के आधुनिकतम यंत्र मौजूद हैं।

मोबाइल फोल वाले बात कर रहे हैं। नमूना पेश है। एक 'हैलो, हैलो। अरे, हैलो, मैं फलां बोल रहा हूं। आवाज आ रही है?''

एक, 'हां, जरा पूछना था कि तुम्हारे सिम कार्ड में कितने पैसे बचे हैं? मुझे जरा बाहर बात करनी थी। मेरे सिम कार्ड में तो पैसे खत्म होने वाले हैं। तुम अपना सेट इधर दे दो। न हो, तो सिर्फ सिम कार्ड ही दे देना।'

दो, 'अरे, कहां यार? इधर तो कड़की चल रही है। पैसे ही कहां आ रहे हैं? धंधा मंदा चल रहा है। मैं तो तुम्हारे पास आने वाला था। अगर इधर तुम थोड़ा सपोर्ट कर दो, तो काम चल जाएगा। ज्यादा नहीं, बस इधर एक महीने के लिए तीन-तीन हजार..., हैलो, हैलो, हैलो।'

एक, 'हैलो, हैलो। नेटवर्क एकदम गड़बड़ हो गया है। आवाज नहीं आ रही है। तुम उधर से डिसकनेक्ट कर दो। बाद में बात करेंगे।

दो, 'हां, हैलो, ठीक है। मैं तुम्हारी बात समझ रहा हूं। कल आने के लिए कह रहे हो ना? मैं ठीक साढ़े दस बजे बैंक पहुंच जाऊंगा। ज्यादा नहीं, बस पांच हजार निकाल लेना।'

एक, 'पैसे कहां है बैंक में? मैं बैंक नहीं जा पा रहा हूं। रास्ते में हो तो बनिए की दुकान पड़ती है। पहले ही चार बार टोक चुका है। बाद में बात करेंगे।'

दो, 'हों, तो ठीक है। तो फिर बैंक के पास ही मिले हैं। ओके, बाई-बाई।'

एक, 'अरे, यह क्या बात हुई? हैलो, हैलो। मेरे पास नहीं हैं। मैं बैंक वगैरह नहीं जाऊंगा। मैने क्या ठेका लिया है तुम्हारे खर्चों का? हैलो, हैलो।'

दूरसंचार क्रांति सफलता की दिशा में बढ़ चुकी है। लोग बनिया का रोककर मोबाइल में सिम कार्ड डाल रहे हैं और बातें कर रहे हैं। लोग दूध के खर्चे में कटौती कर टेलीफोन का बिल भर रहे हैं और बातें कर रहे हैं। लोग संदेश पाने के लिए पेजर खरीद रहे हैं। लोग पीसीओं पर खड़े हैं। लोग हैं, [जो] बाथरूम में मोबाइल लेकर नहा रहे हैं। जा[ने] कब कौन-सा विशेष संदेश टपक पड़े? क[ब] क्या घटित होने वाला हो और हम पीछे ही र[ह] जाएं? एक सामान्य भारतीय सूचना विस्फो[ट] को आनंद लेना चाहता हे। वह हर प्रकार [की] सूचना से, हर संवाद से, हर संभावना से जु[ड़ा] रहना चाहता है। फोन से लेकर पेजर तव[क] सेलुलर से लेकर इंटरनेट तक पूरा जीव[न] इलेक्ट्रानिक्स की एक दुकान हो गया है। क्[या] पता कि कब कोई सुपर जैकपॉट हमा[री] प्रतीक्षा कर रहा हो और हम इंटरनेट पर मौजू[द] न हों? कोई बाशा-पाशा पैंतालीस करोड़ [ले] उड़ा है। अब इंटरनैट ले ही लेना चाहिए। बहु[त] जरूरी है। जीवन की कठोरतम आवश्यकत[ा] है। एक आम हिन्दुस्तानी आदमी ऑक्सीज[न] के बिना रह लेगा, पर फोन के बिना तो अ[ब] जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह गया है। एव[क] मोबाइल जेब से लगा हुआ है। सूचनाएं आ रही है सूचनाएं जा रही हैं। शब्द फैल रहे हैं।

दूरसंचार विभाग अपनी सफलता के विज्ञापन जारी कर रहा है। सम्पूर्ण भारती सूचन[ा] क्रांति के मार्ग पर आगे बढ़ रहा है। पुलिस थान[ों] में अत्यंत उच्च क्षमता के आधुनिकतम ट्रांसमीट[र] लगाए गए हैं। वारदात खत्म होते ही पुलिस आनन-फानन में घटनास्थल पर पहुंच रही है तथा मौका-ए-वारदात के बारे में जरूरी सुबू[त] जुटा रही है। बाढ़ आ रही है, भूकंप हो रहे हैं। दुर्घटनाएं घट रही हैं। सारे दृश्य लाइव वीडियो कवरेज से देश की जनता तक पहुँच रहे हैं। लोग सूचित हो रहे हैं, लोग तेजी से बढ़ती दुनिया के साथ आगे बढ़ रहे हैं। ■

Scanned with OKEN Scanner

हड्डियों को खोखला करता 'फास्ट फूड'

फास्ट फूड और आधुनिक जीवन शैली से महानगरों में लाखों लोगों की हड्डियाँ खोखली हो रही हैं। इसकी वजह से कम उम्र में ही लोग 'ओस्टियोपोरोसिस' नामक बीमारी से ग्रस्त हो रहे हैं। अस्थि रोग विशेषज्ञों का कहना है कि महानगरों में यह बीमारी मूक महामारी के रूप में फैल रही है।

सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि 'ओस्टियोपोरोसिस' का पता लगाने के लिए अभी तक कोई तकनीक नहीं थी। क्योंकि इस बीमारी का उपचार तो है मगर इसका पता तभी लगता है जब किसी की हड्डियाँ इतनी कमजोर हो जाती हैं कि वे मामूली से झटके में ही टूटने लगती है। उस स्थिति में अस्थि रोग विशेषज्ञ उस व्यक्ति को 'ओस्टियोपोरोसिस' का मरीज घोषित कर देते थे। मगर अब इसकी जांच कंप्यूटरीकृत तकनीक से संभव है लेकिन यह जाँच अभी भी छोटे शहरों में नहीं पहँची है। अपोलो अस्पताल के वरिष्ठ अस्थि रोग विशेषज्ञ डॉ. राजू वैश्य ने प्रयोग के तौर पर जब 'ओस्टियोपोरोसिस' नामक बीमारी का पता लगाने के लिए नि:शुल्क जाँच शिविर आयोजित किया तो लगभग अस्सी फीसदी लोगों की

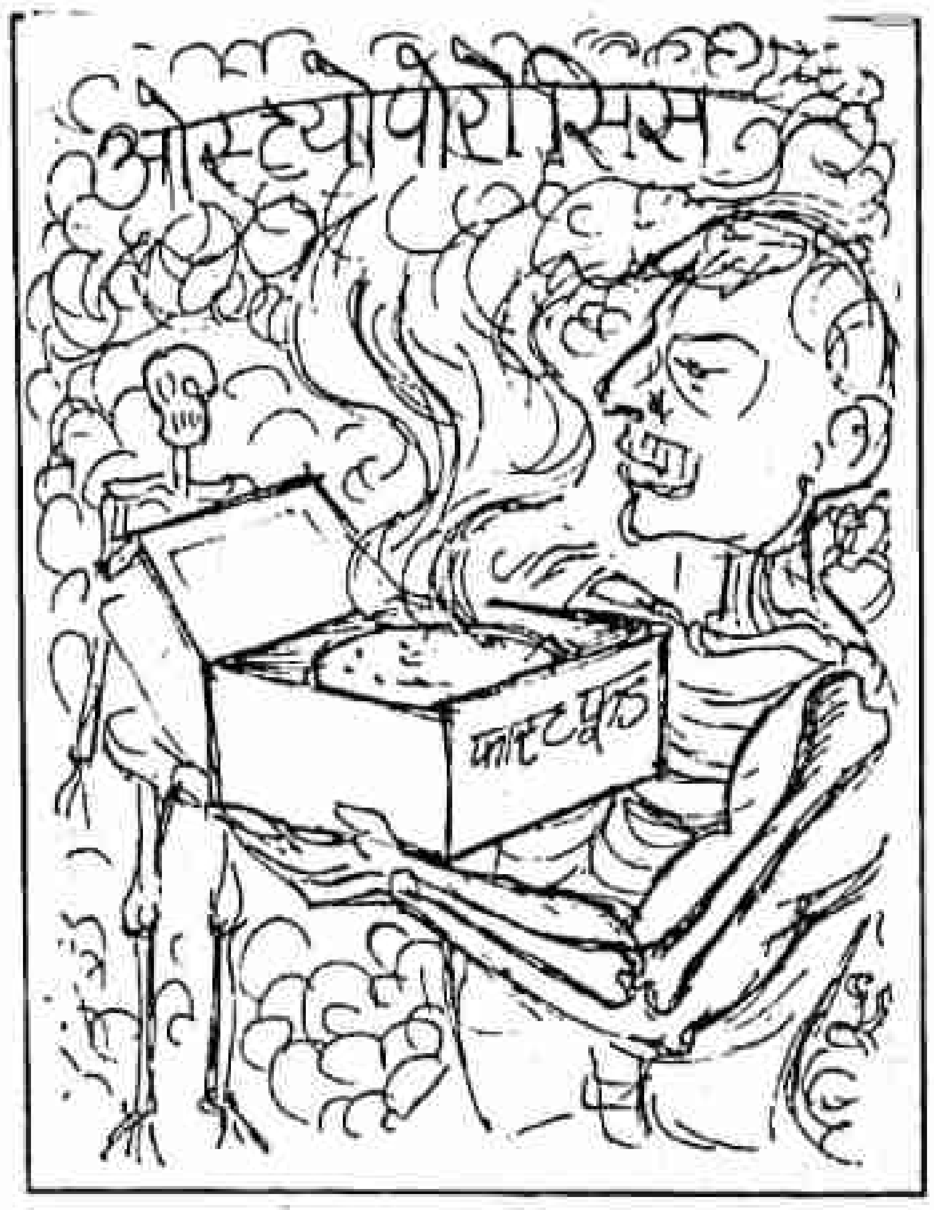

हड्डियाँ प्रभावित पाई गईं।

दो दिन में उन्होंने पाँच सौ से ज्यादा मरीजों का जब परीक्षण कराया तो उसमें अस्सी फीसदी लोग 'ओस्टियोपोरोसिस' से ग्रस्त पाए गए। इनमें २० वर्ष की उम्र के वे युवा भी हैं जो अच्छे घर के हैं मगर फास्ट फूड खाते हैं। इसके विपरीत ६० वर्ष के ऐसे लोग भी पाए गए जिन्हें 'ओस्टियोपोरोसिस' नहीं हैं। क्योंकि वे नियमित शारीरिक अभ्यास, संतुलित भोजन और साग-सब्जी, दूध फल का सेवन करते है। डॉ. वैश्य ने बताया कि हड्डी खोखली होने का संकेत अगर पहले से पता चल जाता है तो उसका उपचार संभव है मगर उम्र ढलने के बाद कोई उपाय नहीं है। उन्होंने बताया कि 'ओस्टियोपोरोसिस' का मतलब होता है पोरस बोन यानी खोखली हड्डी। इस बीमारी में हड्डियों में अस्थि मज्जा कम हो जाता है और धीरे-धीरे यह खोखली होने लगती है।

पुरुषों की तुलना में 'ओस्टियोपोरोसिस' महिलाओं को चार गुना ज्यादा होता है। जो महिलाएं ४५ वर्ष की उम्र पार कर चुकी होती है या मोनोपॉज होने वाली होती है, उनमें भी यह बीमारी ज्यादा होती है। जो महिलाएं कम उम्र में रजोनिवृत हो जाती है या किसी बीमारी के कारण उनकी ओवरनी निकाल दी जाती है, उन्हें भी यह बीमारी की आशंका रहती है। महिलाओं में इस बीमारी के होने का एक कारण उनकी हड्डी पतली होना भी है। 'ओस्टियोपोरोसिस' का पता लगाने के लिए डेक्सा स्कैन नामक टेस्ट किया जाता है। इसे बोन डेंसीटोमीटर भी कहते हैं। यह टेस्ट करीब दो हजार रुपए में होता है और चालीस वर्ष की उम्र के बाद तो यह टेस्ट अवश्य ही कराना चाहिए। ■

आईएलओ को 'मैनेज' करने में लगी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ

श्रमिक मामले में केंद्र सरकार अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के नैतिक दबाव और विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के आर्थिक दबावों के बीच फंसी हुई है। प्रेक्षकों के मुताबिक इस दवाव को कम करने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आईएलओ को ही 'मैनेज' करने के चक्कर में लगी हैं। केंद्र सरकार इन दबावों के कारण काफी ऊहापोह में है।

श्रमिक संगठनों में इस मामले में सरकार के ऊहापोह पर काफी रोष है। सूत्रों के मुताबिक केंद्र सरकार श्रमिक विवाद कानून में बदलाव के लिए एक

विधेयक लाने वाली है जिसके तहत मजदूरों के ट्रेड यूनियन अधिकारों में भारी कटौती की जाएगी। इन संगठनों का मानना है कि सरकार यह विधेयक बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके अंतरराष्ट्रीय प्रतिनिधि विश्व व्यापार संगठन के दबाव में ला रही है। इस संपर्क में 'फिक्की' द्वारा आयोजित उसकी वार्षिक बैठक में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने वायदा भी किया है कि अर्थव्यवस्था के हित में श्रम कानूनों को आधुनिक बनाया जाएगा ताकि उत्पादकता एवं क्षमता बाधित नहीं हो। भारतीय मजदूर संघ (बीएमएस) के राष्ट्रीय अध्यक्ष केशव भाई ठक्कर ने इस बावत पूछने पर बताया कि केंद्र सरकार चारों तरफ के दबाव में

Scanned with OKEN Scanner

काम कर रही है और इस मामले में 'सरकार का अपना कोई चिंतन नहीं है तथा सरकार ने अपनी मंशा खो दी है।' फिक्की की आम सभा में प्रधानमंत्री के इस बयान की उन्होंने आलोचना की जिसमें प्रधानमंत्री ने कहा है कि यह सारा काम सरकार मजदूरों के हित में कर रही है। उन्होंने आपत्ति व्यक्त करते हुए कहा कि प्रधानमंत्री महज शब्दों का खेल कर रहे हैं। श्री ठक्कर ने स्पष्ट तौर पर कहा कि सरकार अधिकतर मामलों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दबाव में है और 'उसने अपनी संप्रभुत्ता खो दी है।'

निरपेक्ष प्रेक्षकों के मुताबिक श्रमिक मामले में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'आईएलओ' सरकारों पर नैतिक दबाव बनाती है। गौरतलब है कि 'आईएलओ' के दो सेमिनारों '८७ और '९८ के अनुसार सभी सरकारी तथा गैर सरकारी कर्मचारियों को अपना संगठन और सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार प्राप्त है। लेकिन सूत्रों के मुताबिक बहुराष्ट्रीय कंप सरकारों पर इसे अनुमोदित न करने का तरीके से तो दबाव बना ही रही है, साथ इस अधिकार को हटवाना चाहती है।

जानकारों का तो यह भी कहन कि विश्व बैंक 'आईएलओ' को हड़पना चाहती है। डब्ल्यूटीओ सारे म को 'फ्लेक्सी लेबर' बनाना चाहता जिसे सुविधाएं तो दी जाएं, लेकिन कभी भी निकाला जा सके।

मधुमेह और दमे की दवा बनने लगी मोतियाबिंद की वज

मोतियाबिंद अब युवकों एवं बच्चों को भी तेजी से अपनी चपेट में ले रहा है। बढ़ते प्रदूषण की वजह से दमा के मरीज बने लोग दवा के रूप में स्टैरायड लेने से कम उम्र में ही मोतियाबिंद के शिकार हो रहे हैं। दूसरी तरफ राजधानी में मधुमेह के मरीजों की तेजी से बढ़ती संख्या के कारण भी आंखों पर मोतियाबिंद का कहर बढ़ता जा रहा है। इसके कारण मोतियाबिंद के इलाज की अत्याधुनिक तकनीक फेकोइमलसिफिकेशन के विशेषज्ञों के पास बड़ी संख्या में मरीज पहुँच रहे हैं जिनमें बच्चे एवं युवक भी शामिल होते है। विशेषज्ञों का मानना है कि युवकों के बीच ताकत बढ़ाने वाली दवा का क्रेज भी कम उम्र में मोतियाबिंद होने का कारण बन रहा है। ये तथ्य हाल में ही संपन्न हुए नेत्र दोष एवं निवारण संबंधी जानकारी विषय पर संपन्न हुए सम्मेलन में उभर कर आए।

सम्मेलन में नेत्र रोग विशेषज्ञ डॉ. अल्केश चौधरी ने बताया कि राजधानी में बढ़ता प्रदूषण एवं डायबिटीज के रोग असर यहाँ रहने वाले लोगों की आँखें भारी पड़ रहा है। दिल्ली के लोगों खानपान की बुरी आदतों एवं र जीवनशैली के कारण यहाँ मधुमेह का तेजी से बढ़ रहा है।

मधुमेह मोतियाबिंद होने का प्र कारण बनकर सामने आ रहा है। म की चपेट में युवा वर्ग के लोग भी ब संख्या में आ रहे है और वे मोतिय के शिकार हो रहे हैं।

पश्चिम में लोकप्रिय भारतीय लकड़ी के खिलौने

भारत में बने लकड़ी के खिलौनों की लोकप्रियता पश्चिमी देशों के सभी उम्र के बच्चों में तेजी से बढ़ रही है। खिलौने बनाने वाली प्रमुख भारतीय कंपनी फन स्कूल के मुख्य कार्याधिकारी रेफेल कुरियन ने यहाँ प्रेट्र को बताया कि भारत में बने लकड़ी के खिलौने पश्चिमी देशों में इस लिए पसंद किए जा रहे हैं क्योंकि यह पर्यावरण अनुकूल है। साथ ही यह वैज्ञानिक आधार पर उगाए गए पौधों जैसे रबर को प्रसंस्कृत करके तैयार किए जाते है लिहाजा इनसे वनों की कटाई का भी खतरा नहीं है। कुरियन ने बताया कि कंपनी ने गत वर्ष विदेशी बाजारों विशेषकर यूरोप और अमरीका में आठ करोड़ रुपए का निर्यात किया जिनमें उसके लकड़ी के खिलौनों की नयी शृंखला 'जेनका' का मुख्य योगदान है।

अमरीका के एक राज्य में भारतीय बीड़ी पीने पर जुर्माना होगा अब

भारत ने मेहनतकश वर्ग की पसंदीदा 'बीड़ी' ने अमरीका में सिगरेट बड़े-बड़े ब्रांडों के छक्के छुड़ा दिए हैं। विदेश व्यापार विभाग के लोग अमरी युवक-युवतियों के होठों पर दबी भारतीय बीड़ी को देख-देखकर हैरान हो रहे सिगरेट की घटती लोकप्रियता और बीड़ी की बढ़ती बिक्री ने बड़ी कंपनियों किसी भी तरह इस भारतीय उत्पाद को बाजार से बाहर करने के उपाय तलाशने विवश कर दिया है। इसी क्रम में इलीनोइस अमरीका का यह पहला राज्य बन ग है जहाँ बीड़ी को प्रतिबंधित कर दिया गया है, जिनका भारत से आयात किया जा है। भारतीय बीड़ी के खिलाफ इस पहली बड़ी कार्रवाई कें तहत इलीनोइस में ए जनवरी से जो भी बीड़ी पीता नजर आएगा उससे १०० से १००० डॉलर तक जुर्माना वूसला जाएगा। तंबाकू परिषद् के कार्यकारी निदेशक गैरी एवराम ने कहा बीड़ी के प्रवेश के पहले वर्ष से ही इसके खिलाफ साजिशें की जा रही बहरहाल अमरीका में इस ताजा प्रतिबंध के बाद भारतीय बीड़ी का निर्यात निश्च ही प्रभावित होगा।

Scanned with OKEN Scanner

स्वदेशी उत्पादनों की सूची

वस्तु	स्वदेशी उत्पादन -प्रयोग करें	बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पादन- बहिष्कार करें
नहाने का साबुन	संतूर, निरमा, स्वस्तिक, मैसूर सैंडल, विप्रो-शिकाकाई, फ्रेश,अफगान, कुटीर, होमाकोल, प्रिमियम, मीरा, मेडिमिक्स, विमल, चंद्रिका, गंगा,सिंथाल, वनश्री, सर्वोदय तथा लघु-कुटीर उद्योग के अन्य स्थानीय उत्पादन	लक्स, लिरील, लाईफबॉय, पियर्स, रेक्सोना, हमाम, जय, मोती,. कॅमे, डॉव, पॉण्ड्स, पामऑलिव, जॉन्सन, क्लिएरसिल, डेटॉल, लेसान्सी, जस्मीन, गोल्डमिस्ट, लक्मे, ॲमवे, क्वांटम, मार्गो
कपड़े धोने का साबुन	स्वस्तिक, ससा, प्लस, आधुनिक, निरमा, ॲक्टो, विमल, हीपोलीन, टी-सीरीज, होमाकोल, डेट, पीतांबरी, वी.वी., फेना, उजाला, टाटा शुद्ध, इझी, घड़ी, जेंटिल तथा अन्य कुटीर और लघु उद्योग के निर्मित साबुन	सनलाईट, व्हील, एरियल, चेक, डवल, ट्रीलो, ५०१, ओके, की, रिवेल, ॲमवे, क्वांटम, सर्फ एक्सेल, रिन, विमबार, रॉबिन ब्लू और हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड के अन्य उत्पादन
टूथपेस्ट दंतमंजन टूथब्रश	स्वदेशी, बबूल, प्रॉमिस, विको, अमर, ओरा, ॲंकर, डाबर, चॉईस, टू-जेल,मिसवाक, अजय, हर्बोडेंट, अजंता, गरवारे ब्रश, क्लासिक, ईगल, दंतपोला, बंदर छाप, वैद्यनाथ, इमामी, युवराज, और अन्य स्थानीय उत्पादन	कोलगेट, सिबाका, क्लोजअप, पेप्सोडेंट, सिग्नल, मॅक्लीन्स, प्रुडंट, ॲमवे, क्वांटम, अक्वा फ्रेश, नीम, ओरल-बी, फोरहॅन्स
दाढ़ी का साबुन ब्लेड्स	गोदरेज, अफगान, इमामी, सुपर, स्वदेशी, सुपरमॅक्स, अशोक, पनामा, वी-जॉन, टोपाज, प्रीमियम, पार्क ॲवेन्यू, लेझर, विद्युत, जे.के. तथा अन्य स्थानीय उत्पादन	पामऑलिव, ओल्ड स्पाईस, निविया, पॉन्ड्स, प्लैटिनम, जिलेट, सेवेन-ओ-क्लाक, विलमेन, विल्टेज, इरॅस्मिक, स्विस, लॅक्मे, डेनिम
सौंदर्य प्रसाधन औषधि	टिप्स एण्ड टोज, श्रृंगार, सिंथॉल, संतूर, इमामी, अफगान, बोरोप्लस, तुलसी, विको टर्मरिक, आर्निका, हेयर एण्ड केयर, हिमानी, पॅराशूट, डॅन्ड्रफ सोल्यूशन, सिल्केशा, हिमताज, फेम, बलसारा, जे.के., डाबर, झंडू, सांडू, वैद्यनाथ, हिमालय,भास्कर, तन्वी, बोरोलीन, केराफेड़, बजाज सेवाश्रम, प्रकाश, कोकोराज, प्रिमियम, मूव, क्रॅक क्रीम, पार्क ॲवेन्यू तथा अन्य स्थानीय उत्पादन	जॉन्सन, पॉण्ड्स, ओल्ड स्पाईस, क्लियरसिल, ब्रिलक्रीम, फेयर एण्ड लवली, वेल्वेट, मेडीकेयर, लेवेंडर, नायसिल, शॉवर टू शॉवर, क्यूटीकुरा, लिरिल, लॅक्मे, डेनिम, ऑरगॅनिक्स, पॅन्टीन, रूट्स, हेड एण्ड शोल्डर, ॲमवे, क्वांटम, क्लीनिक, निहार, कोको केयर
बिस्कीट चॉकलेट दुग्ध उत्पादन ब्रेड	न्यूट्रीन, शांग्रीला, चॅम्पियन, ॲम्प्रो, पारले, साठे, बेकमन, प्रियागोल्ड, मोनॅको, क्रॅकजॅक, गिट्स, शालीमार, पॅरी, रावलगांव, नीलगिरी, क्लासिक, अमूल, न्यूट्रामूल, मॉन्जीनीज, आरे, कॅम्पको, सम्राट, रॉयल, विजया, इंडाना, सफल, एशियन, बिब्ज् ब्रेड, वेरका, सागर, सपन तथा अन्य स्थानीय उत्पादन	ब्रिटानिया-गुड डे, टाईगर, मारी, नेसले, कॅडबरी, बोर्नव्हिटा, हॉर्लिक्स, बूस्ट, मिल्कमेड, किसान, मॅगी, फॅरेक्स, अनिकस्प्रे, कॉम्प्लान, किटकॅट, डबल डेकर, चार्ज, एक्लेअर, मॉडर्न ब्रेड, ब्रिटानिया ब्रेड, माल्टोवा, व्हिवा, मिल्कफूड, माइलो
चाय कॉफी	गिरनार, हसमुख, टाटा टी, आसाम टी, सोसायटी, सपट (इंस्टंट), डंकन, ब्रह्मपुत्र, एम.आर., सन टिप्स, इंडिया, अशोक, तेज, टाटा कॅफे, कंसोलिडेटेड कॅफे, टाटा-टेटली और अन्य स्थानीय उत्पादन	ब्रुक बाँड, ताजमहल, रेड-लेबल, डायमंड, लिप्टन, ग्रीन लेबल, टाईगर, नेसकॅफे, नेसले, डेल्का, ब्रू, सनराईज, थ्री फ्लावर्स
शीतपेय शरबत, चटनी अचार, मुरब्बा	एनर्जी, सोसयो, कॅम्पाकोला, गुरूजी, ओन्जुस, जाम्पिन, नीरो, पिंगो, फ्रूटी, आस्वाद, डाबर, माला, रॉजर्स, बिसलेरी, रसना, हमदर्द, मॅप्रो, रेनबो, कॅल्वर्ट, स्वीटेम्बिलका, रूह-आफजा, जय गजानन, हल्दीराम, गोकुल, बीकानेर, वेकफील्ड, नोगा, प्रिया, अशोक, मदर्स रेसेपी, उमा तथा अन्य स्थानीय उत्पादन	लेहर, पेप्सी, सेवन-अप, मिरींडा, टीम, कोका-कोला, मॅकडॉवेल, मॅंगोला, गोल्डस्पॉट, लिम्का, सिट्रा, थम्स-अप, स्प्रिंट, ड्यूक्स, फॅन्टा, कॅडबरी, कॅनडा ड्राय, क्रश
आईस्क्रीम	दिनशॉ, जॉय, वाडीलाल, श्रीराम, पेस्तनजी, नेचर वर्ल्ड, गोकुल, अमूल, हिमालय, निरुला, आरे, पेरीना, मदर डेयरी, अशोका, विंडी, हॅव-मोर, वेरका तथा अन्य स्थानीय उत्पादन	कॅडबरी, डॉलॉप, नाईस, ब्रुक ब्रांड के उत्पादन, वॉल्स, क्वालिटी, बास्कीन-रॉबिन्स, यांकी-डूडल्स, कॉरनेट्टो
खाद्यतेल खाद्यपदार्थ	मारुति, पोस्टमैन,धारा, रॉकेट, गिन्नी, स्वीकार, कॉरनेला, रथ, मोहन, उमंग, विजया, सपन, पॅराशूट, अशोक, सफोला, कोहिनूर, मधुर, इंजन, गगन, अमृत वनस्पति, रामदेव, एमडीएच, एवरेस्ट, बेडेकर, कुबल, सहकार, लिज्जत, गणेश, शक्तिभोग आटा, टाटा नमक, तथा अन्य स्थानीय उत्पादन	डालडा, क्रिस्टल, लिप्टन, अन्नपूर्णा नमक, आटा और चपाती, मॅगी, किसान, तरला, ब्रुक-बाँड, पिल्सबरी आटा, कॅप्टन कुक नमक और आटा, मॉडर्न चपाती, कारगिल आटा
विद्युत उपकरण गृहोपयोगी वस्तु घड़ियां	विडियोकॉन, बी.पी.एल.,ओनिडा, सलोरा, ई टी एण्ड टी, टी-सीरीज, नेल्को, वेस्टन, अपट्रॉन, केल्ट्रान, कॉस्मिक, टीवीएस, गोदरेज, क्राउन, बजाज, उषा, पोलर, ऍंकर, सूर्या, ओरिएन्ट, सिन्नी, टूल्लु, क्रॉम्पटन, रवि, शंकर, कैलाश, जय, श्रीराम, लॉइडस्, ब्लू स्टार, व्होल्टास, कूल होम, खेतान, एव्हरेडी, जीप, नोविनो, निर्लेप, इलाईट, अंजलि, सुमित,जयको, टाइटन, अजन्ता, एचएमटी, मैक्सिमा, आल्विन घड़ी, बंगाल, मैसूर, हॉकिन्स, प्रेस्टीज, राजेश प्रेशर कुकर और अन्य स्थानीय उत्पादन	जीईसी, फिलिप्स, सोनी, टीडीके, निप्पो, नॅशनल-पॅनासोनिक, शार्प, जीई, व्हर्लपूल, सॅमसंग, देवू, तोशीबा, एल जी, हिताची, थॉमसन, इलेक्ट्रोलक्स, अकाई, सानसुई, केनवुड, आइवा, ऑल्विन फ्रिज, कॅरियर, कोंका, टपरवेयर, जापान लाईफ, ओमेगा, टाइमेक्स, राडो
लेखन सामग्री	जीफ्लो, विल्सन, कॅम्लिन, रेव्हलॉन, रोटोमॅक, सेलो, स्टिक, चंद्रा, मोंटेक्स, कॅमल, बिट्टू, स्टिक, प्लेटो, कोलो, भारत, त्रिवेणी, फ्लोरा, अप्सरा, नटराज, लायन, हिंदुस्तान,ओमेगा, लोटस तथा अन्य स्थानीय उत्पादन	पार्कर, पायलट, विंडसर-न्यूटन, फायबर-कॅसल, लक्झर, बिक, मॅांट ब्लॅंक, कोरस, अेस, रोटरिंग
जूते, चप्पल पॉलिश	लखानी, लिबर्टी, स्टॅन्डर्ड, ॲक्शन, पॅरागॉन, फ्लॅश, करोना, वेलकम, रेक्सोना, रिलॅक्सो, लोटस, रेड-टेप, फिनिक्स, वायकिंग, बिल्ली, कार्नोबा, किवी शू पॉलिश, तथा अन्य स्थानीय उत्पादन	बाटा, प्यूमा, पॉवर, चेरी-ब्लॉसम, आदिदास, रिबॉक, नाइक, लीकूपर, गैसोलीन
तैयार कपड़े	मफतलाल, ट्रेंड, केम्ब्रिज, चरागदीन, डबल बुल, झोडिएक, अरविंद डेनिम, डॉन, प्रोलीन, टीटी, लक्स, अमूल, वीआईपी, रूपा, रेमण्ड, पार्क एवेन्यू, अल्टिमो, न्यूपोर्ट, किलर, एक्सकॅलिबर, फ्लाईंग मशीन, ड्यूक्स, और कलकत्ता, लुधियाना तथा तिरुपुर के सभी होजियरी सहित अन्य स्थानिक उत्पादन	ली के सभी उत्पादन, पीटर इंग्लंड, बर्लिंगटन, ॲरो, लकोस्ट, सॅनफ्रिस्को, कलरप्लस, व्हॅन हुसेन, लुई फिलिप, लेविस, पेपे जीन्स, रॅंगलर, बेनेटोन, रीड एण्ड टेलर, ॲलेन सॉली, बायफोर्ड

प्रकाशक : स्वदेशी जागरण प्रकाशन, 60, नॉर्थ एवेन्यू, नई दिल्ली-110 001 ● दूरभाष : 3018175

Scanned with OKEN Scanner

अभ्युदय की ज्योति निकल - वैभव भर दे यहाँ विमल ।

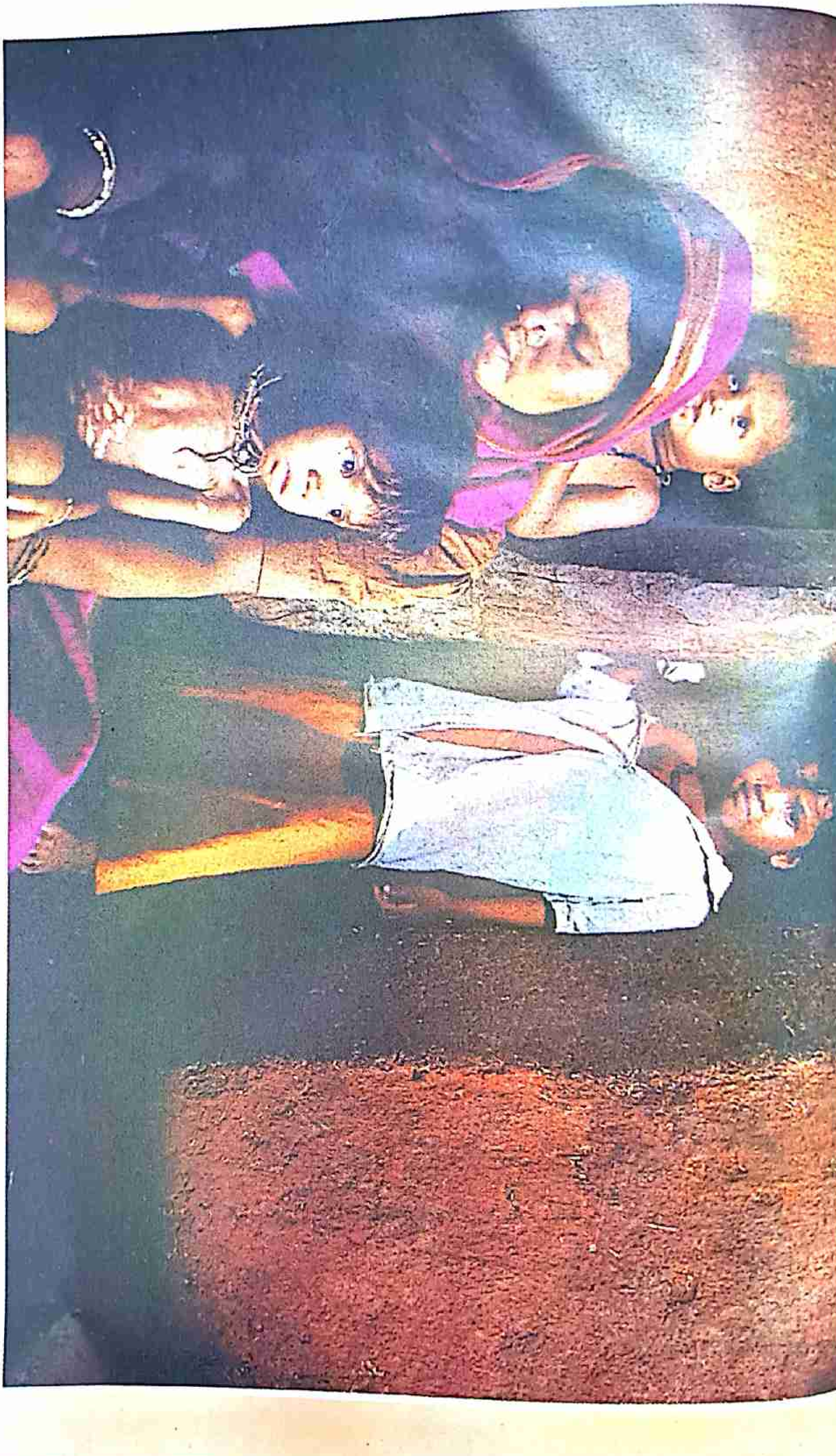

ईश्वर दास महाजन द्वारा स्वदेशी जागरण फाऊंडेशन के लिए कुमार ब्रदर्स प्रिंटिंग प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२ से मुद्रित एवं ६०, नॉर्थ एवेन्यू से प्रक